Chap-4

चतुर्थ अध्याय

निराला काव्य में संगीत तत्व

१- निराला की सांगीतिक मान्यताएं

२- निराला काव्य में संगीत तत्व, तान, स्वर, सरगम, सप्तक, लय, ताल, गत तथा मींड़, निराला का राग ज्ञान ।

३- निराला काव्य में वाद्य यन्त्र, तत वाद्य, वितत वाद्य, घन वाद्य ।

४- निराला जी का नृत्य सम्बन्धी ज्ञान नृत्य शैलियाँ, नूपुर, अंग संचालन

५- निराला और लोक संगीत, गज़लें

६- निराला काव्य में लय और ताल, निष्कर्ष ।

- :: निराला काव्य में संगीत - तत्व :: -

सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक महत्वपूर्ण साहित्यकार माने जाते हैं। आपने आधुनिक हिन्दी काव्य को भी सांगीतिक दृष्टिकोण से सजाया तथा संवारा है। इस अद्भुत एवं नवीन प्रयोग के कारण वे आधुनिक कवियों में सर्वोपरि हैं। निराला जी ने काव्य की रचना अन्तर्हृदय से की है इसलिये उनके काव्य में संगीतात्मकता स्वाभाविक ही उपलब्ध है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता छन्दों के ऐतिहासिक प्रयोगों के साथ उन्हें लयात्मकता प्रदान करना है। उन्होंने नाद, लय तथा भाव का इतना सुन्दर सामंजस्य किया है कि ऐसा सामंजस्य अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। "" संगीत निराला जी का जन्मजात अलंकार है। पाँच - सात वर्ष की आयु से ही निराला जी महिषादल के राजमन्दिर जाया करते थे और वहाँ घण्टों घड़ियालों की संगीतमय ध्वनि को सुनकर एकदम तन्मय हो उठते थे। उनकी माता को भी संगीत से विशेष लगाव था और वह बैसवाड़ी के लोक गीतों को गुनगुनाती रहती थीं। निराला जी पर इन सभी संस्कारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। विरासत में मिला संगीत प्रेम और निराला जी का संगीत के

प्रति विशेष्य लगाव दोनों के कारण निराला जी का काव्य,संगीत का सहयोग पाकर अबाध गति से अग्रसर हुआ। निराला जी को प्रारम्भ से ही राजा जी के हारमोनियम पर अभ्यास करने का अवसर प्राप्त हुआ था। इसके साथ साथ महिषादल राज्य में आने वाले प्रमुख संगीतज्ञों, घरानेदार गवैयों तथा बड़े बड़े उस्तादों के आगमन पर उनके पास जाकर अपना संगीत-ज्ञान-वर्द्धन किया करते थे। इस प्रकार संगीत गुणियों के सम्पर्क से उन्हें ठुमरी, ध्रुपद, भजन तथा बंगला के भाव-गीतों का अच्छा अभ्यास हो गया और वे गीत-गोविन्द के संस्कृत गायन से लेकर सूर, तुलसी, मीरा और रवीन्द्रनाथ के अनेक गीत निपुणतापूर्वक गाने लगे।"[१]

"संगीत - मर्मज्ञ होने के साथ साथ निराला स्वयं बहुत अच्छे गायक भी थे, वह मस्ती में गाते थे। स्वर अपने आप सधे हुए लगते और शब्दों की ध्वनि के साथ वह स्वर का ऐसा योग देते कि भाव में और भी गहराई आ जाती। उनके स्वर में पिघले सोने का सा मार्दव था। आवाज तार सप्तक के लायक न तो महीन थी, न मन्द के लायक अति गम्भीर। गले में कहीं खराश न थी। जब धीमे गाते तब स्वर सहज हो रेशम के लच्छों जैसे निकलते।"[२]

निराला जी की गीतिका हिन्दी काव्य में एक नवीन तथा अद्भुत प्रयोग है। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में काव्य और संगीत की साधना को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है जिनमें से किसी को भी प्राथमिक या गौण नहीं कहा जा सकता। उन्हीं के कथनानुसार "मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है।"[3]

गीतिका एक भविष्य अभिलाषा और उच्च आदर्श की आकांक्षा से प्रणीत हुई है। गीतिका में १०१ गीत हैं जो काव्य और भाव की दृष्टि

से ही नहीं संगीत की दृष्टि से भी श्रेष्ठ और सफल है। गीतिका में संकलित गीतों की स्वरलिपि वह स्वयं ही करना चाहते थे लेकिन उनका दुर्भाग्य था कि एक अच्छे हारमोनियम की गुंजाइश भी उनके लिये नहीं हुई। इनके गीतों में दो एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत ने छन्दशास्त्र की अनुवर्तिता की है।

निराला की सांगीतिक मान्यतायें :-

निराला गीत-सृष्टि को शाश्वत मानते हैं। उन्होंने समस्त शब्दों का मूल कारण ध्वनिमय ओंकार ही स्वीकार किया है। उनके विचार से अनाहत नाद से ही स्वर सप्तकों की सृष्टि हुई है। समस्त विश्व स्वर का ही पुंजीभूत रूप है। अलग अलग व्यष्टि में स्वर-विशेष-व्यक्त या मौन। संगीत का उद्देश्य, एक मात्र उद्देश्य, अक्षय एवं दिव्य आनन्द की सृष्टि है। संगीत के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए महाकवि ने "गीतिका" की भूमिका में लिखा है - "स्वर संगीत स्वयं आनन्द है। आनन्द ही इसकी उत्पत्ति, स्थिति और परिसमाप्ति है। जहाँ आनन्द को लोकोत्तर संसार से बाहर ऊँचे रहने वाले किसी की ओर इंगित किया है आनन्द की अभिन्न सत्ता प्रतिपादित की है वहाँ संगीत का यथार्थ रूप अच्छी तरह समझ में आ जाता है।"[4]

निराला जी के गीतों में काव्य और संगीत दोनों सन्तुलित रूप में है। संगीत में काव्य की हत्या करना उनको शिरोधार्य नहीं है - "प्राचीन गवैयों की शब्दावली, संगीत की रक्षा के लिये किसी तरह जोड़ दी जाती थी इसलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है, ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्द कोश पर लांछन लगाते हैं उनसे भी बचने का प्रयास किया है। दो-एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के

छन्दशास्त्र की अनुवर्तिता की है । जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव है तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है ।"[5] यदि हम निराला के काव्य का अनुशीलन करें तो उनके काव्य में संगीतात्मकता अलग से जुड़ी हुई दिखाई नहीं देती ।

निराला गीत-सृष्टि के लिए काव्य कला और संगीत कला का संयोग आवश्यक मानते हैं । जब तक दोनों विधाओं को संजोकर उन्हें समन्वित कर एक में रखने की शक्ति न हो, तब तक सफल गीत सृष्टि नहीं हो सकती । निराला जी ने स्वयं कहा है कि "उनके कुछ गीत कवि सम्मेलनों या अन्य गोष्ठियों में गाकर की गई अदायगी से बहुत भिन्न है ।"[6]

भारतीय - संगीत के सम्बन्ध में निराला जी की धारणा है कि भारतीय संगीत का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप वैदिक ऋचाओं में पाया जाता है । "आर्य-जाति का सामवेद संगीत के लिये प्रसिद्ध है, यों इस जाति ने वेदों में जो कुछ भी कहा भावमय संगीत में कहा है, संगीत का ऐसा मुक्त रूप अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता । गायत्री की महत्ता आज भी आर्यों में प्रतिष्ठित है । इसके नाम में ही संगीत की सूचना है । भाव और भाषा की ऐसी पवित्र झंकार और भी कहीं है, मुझे नहीं मालूम । स्वर के साथ शब्द, भाव और छन्द तीनों मुक्त हैं ।"[7] इस प्रकार निराला की दृष्टि में गायत्री मन्त्र आदर्श-संगीत का प्रतीक है जिसमें भाव की मुक्ति के साथ शब्द और गीत की मुक्ति भी सन्निहित है । प्राचीन ऋषि की मुक्त आत्मा की झंकार इस वेद मन्त्र में मिलती है । इसमें न तो छन्द का बन्धन है और न मात्राओं की गणना का, फिर भी यह एक उत्तम भावोच्छ्वास को आविर्भूत करता है । साथ ही संगीत के मुक्त किन्तु सशक्त स्वरूप का आकलन भी करता है । वेदों के पश्चात् संगीत का विकास संस्कृत साहित्य में हुआ है । निराला जी का अनुमान है कि वैदिक वाणी में संगीत का जो निर्वाद स्वरूप है, उसे ही छन्द - ताल - वाद्य से बांधकर संस्कृत भाषा के माध्यम से लोकानुरंजक बना दिया गया है । संगीत के विकास क्रम में निराला जी ने देश-भाषाओं के संगीत को

संस्कृत - संगीत से हीनतर मानता है । उनका कथन है कि संस्कृत गीत-गोविन्द में संगीत का जो स्तर है, वह चण्डीदास और गोविन्ददास जैसे देश - भाषा के कवि गायकों से उच्चतर है । "गीत-गोविन्द" में आए हुए श्रृंगार को आज के लोग अश्लील मानते हैं किन्तु निराला उसकी अश्लीलता को स्वीकार नहीं करते ।

"निराला जी संगीत को जन साधारण और उससे भी आगे बढ़कर प्रबुद्ध और सुरुचि सम्पन्न भारतीय मात्र की थाती मानते हैं और इसी की रक्षा के लिये स्वर, ताल, लय से बद्ध भावपूर्ण गीतों से शुद्ध संगीत को उन तक पहुंचाने का अहम् कार्य भी किया ।"[5] भारतीय संगीत में जो गीत रागों और तालों में निबद्ध करके गाए जाते हैं उनमें प्राचीन गीतों का ही प्राधान्य है । हिन्दी के पुराने कवियों में निराला जी कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के संगीत के प्रशंसक हैं । उनका यह विश्वास था कि सूर तथा तुलसी के गीत साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । मीरा तो संगीत की देवी है । जनता में कबीर से मीरा तक सभी के गीतों को सफल भजनों के रूप में माना जाता है ।

"हिन्दी में सूर, कबीर, तुलसी और मीराबाई आदि बहुत से महाकवि ऐसे हो गए हैं जिन्हें हम सम स्वर शब्दशिल्पी भी कहते हैं और सुगायक भी, मीरा और सूर के लिए तो केवल यह कहना कि अच्छा गाते थे, अपराध होगा । ये संगीत सिद्ध थे, संगीत की उस कोमलता तक पहुँचे हुए थे जहां परम कोमल सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्ण की स्थिति है ।"[6]

"निराला जी आधुनिक युग के कवि होते हुए भी भारतीय-संगीत पर जो पाश्चात्य प्रभाव है उसे बुरा नहीं मानते । कला, साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र में वे इस प्रकार के आदान प्रदान के समर्थक थे ।

"पश्चिम की एक दूसरी सभ्यता देश में प्रतिष्ठित हुई । इसका

प्रभाव हर तरह बुरा रहा, ऐसा कोई समझदार नहीं कह सकता । इसके शासन की सफल उन्नति सभी मार्गों में प्रत्यक्ष है । अंग्रेजी संगीत से प्रभावित होने के ये मानी नहीं कि उसी को हू-बहू नकल की गई है । अंग्रेजी संगीत की पूरी नकल करने पर उससे भारत के कानों को कभी तृप्ति होगी, यह सन्दिग्ध है । कारण, भारतीय-संगीत की स्वर मैत्री में जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं, वे अंग्रेजी संगीत में लगते हैं । उनसे अंग्रेजी (मेरा ' अंग्रेजी ' शब्द से मतलब पश्चिमी से है) हृदय में ही भाव पैदा होता है । अस्तु, अंग्रेजी संगीत के नाम से जो कुछ लिया गया, उसे हम अंग्रेजी संगीत का ढंग कह सकते हैं । स्वर-मैत्री हिन्दुस्तानी ही रही । डी० एल० राय और रवीन्द्रनाथ इस ढंग के अपनाने के प्रधान साहित्यिक कहे जायेंगे । एक स्वर को डी०एल०राय का स्वर के नाम से बंगाल प्रसिद्ध है । इसकी लोकप्रियता आज तक है । यह स्वर अंग्रेजी ढंग से निर्मित है, पर इसे भारतीयता का रूप दिया गया है । स्वर मैत्री के विचार से रवीन्द्रनाथ के संगीत का ढंग साफ अंग्रेजीपन लिए हुए हैं, फिर भी ये भिन्न भिन्न रागिनियों में ही बँधे हुए हैं, सिर्फ अदायगी अंग्रेजी है । राग-रागिनियों में भी स्वतन्त्रता ली गई है । भाव-प्रकाशन के अनुकूल उनमें स्वर विशेष लगाये गए हैं । उनका शुद्ध रूप मिश्र हो गया है ।[१०] इसके साथ साथ वे भारतीय संगीत की राष्ट्रीय परम्परा के पोषक हैं और उन्हें इस बात का दुःख है कि पाश्चात्य समाज भारतीय संगीत का यथार्थ आकलन और आस्वादन करने में अक्षम रहा है । उनका कहना है कि इसका मूल कारण पश्चिम की अपनी सांस्कृतिक दृष्टि है । निराला जी को संगीत में प्रयुक्त परम्परागत एकांकी शब्दावली और उसकी दोष मुक्त शैली से असन्तोष था। संगीत में सम पर आना आवश्यक माना गया है परन्तु निराला जी क्रान्तिकारी, विद्रोही और स्वतन्त्र प्रकृति के होने के कारण उन्हें सम पर

आने से बड़ी चिढ़ थी क्योंकि बंधे हुए तालों एवं तानों में आलाप की तथा स्वयं गायक की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है - " इन संस्कारों के फलस्वरूप हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने का ढंग दोनों मुझे खटकते रहे । न तो प्राचीन "ऐसो सिय रघुबीर भरोसो" शब्दावली अच्छी लगती थी । यद्यपि इसमें भक्ति भाव की कमी न थी, न उस समय की आधुनिक शब्दावली " तीर तोपें सब धरी रह जायेंगी मारुर सुन" यद्यपि इसमें वैराग्य की मात्रा यथेष्ट थी । हिन्दी गवैयों का सम पर आना मुझे ऐसा लगता था जैसे मजदूर लकड़ी का बोझ मुकाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चिंत हुआ । मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि खड़ी बोली की संस्कृति जब तक संसार की श्रेष्ठ सौन्दर्य भावनाओं से मुक्त न होगी, वह समर्थ न होगी ।"[११]

निराला जी ने देखा कि ब्रज भाषा परम्परागत संगीत पद्धति खड़ी बोली के अनुकूल नहीं है । " खड़ी बोली को उन्होंने नया संगीत स्वरूप प्रदान किया । रूढ़ियों, श्रृंखलाओं, बन्धनों एवं जीर्णताओं को तोड़ फेंकने वाले व्यक्तित्व के धनी कवि ने संगीत के प्रति भी नवीन मौलिक और प्रभावशाली दृष्टि अपनाई है । मौलिक और अभिनव के प्रति कवि की आकांक्षा कविता के इन स्वरों में ध्वनित हुई है ।"[१२]

"नव गति, नव लय, ताल छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद मन्द्र रव,
नव नभ के नव विहग - वृन्द को,
नव पर नव स्वर दे ।"[१३]

निराला जी की हार्दिक इच्छा थी कि भारतीय कविता का संगीत इन्हीं नवीन उपादानों से प्रसारित हो । यही कारण है कि जहाँ एक ओर उनके काव्य में भारतीय शास्त्रीय संगीत का समावेश है वहाँ दूसरी ओर लोक संगीत,

पश्चिमी संगीत, बंगला एवं उर्दू भाषा की गजलें इत्यादि देखने को मिलती है। "कुछ गीत शास्त्रीय राग-रागिनियों में बंधे रहते हैं। निराला के अनेक गीत इसी शास्त्रीय संगीत का अनुवर्तन करते हैं। एक दूसरा है स्वच्छन्द संगीत। इसमें कतिपय भारतीय लयों, ग्राम्य गीतों का समन्वय मिलता है। निराला जी के अनेक गीत इस स्वच्छन्द शैली में लिखे गए हैं।"[१४] अपने काव्य में संगीत के नवीन रूप का समावेश करके उन्होंने अपनी प्राचीन उत्कृष्ट परम्पराओं का उदात्तीकरण किया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निराला जी की संगीत संबंधी अपनी मान्यताएं हैं।

निराला काव्य में संगीत तत्व :-

निराला जी संगीत प्रेमी होने के कारण संगीत के सभी पक्षों की उन्हें पूर्ण रूप से जानकारी थी। यही कारण है कि इन्होंने "संगीत के पारिभाषिक शब्दों का अवलम्ब ग्रहण करके, कहीं उन्हें प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त करके, कहीं आन्तरिक संगीत के समावेश से, कहीं वाद्य संगीत के सामंजस्य से अपनी रचनाओं में ऐसा सांगीतिक परिवेश समाहित किया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी अभिव्यंजना और काव्यभाषा सांगीतिक भाव - भंगिमा में ओत प्रोत हो गई। निराला जी के गीतों में संगीत तत्व आयास या उद्देश्य से थोपा नहीं गया, अपितु रागात्मक अनुभूतियों से समन्वित होने के कारण उनमें संगीतात्मक स्वयमेव झलकती दिखाई देती है।"[१५] इसी प्रकार "हिन्दी-साहित्य के छायावादी युग में कवि ने जब अपने अन्तर की राग-रसिकता और हृदय का मंथन कर देने वाली विह्वलता को प्रगीतों का स्वरूप प्रदान करना आरम्भ किया। तब भावाभिव्यक्ति के लिये जैसे उसे छन्दों के बन्धन भार स्वरूप प्रतीत हुए थे। उसी प्रकार जाने अन जाने भाषा की जकड़ बन्दी से प्रसूत भी खिल

उठी और इस जड़ता का परिहार करने के लिये उसने अनायास ही संगीत के सुकुमार सौन्दर्य शास्त्रीय पक्ष को अपना लिया । कविता और संगीत का सम्बन्ध अन्याश्रित होने से यह प्रक्रिया अतीव अनुकूल भी सिद्ध हुई और उसकी मनोरम कल्पनाएं मानों पंख लगाकर अनन्ताकाश में उन्मुक्त उड़ानें भरने लगीं । स्थूल का परित्याग कर सूक्ष्म, को ग्रहण करने वाले छायावादी कवि को संगीत की सूक्ष्मता, सुकुमारता और तरलता वरदान हो उठी । छायावादी कवियों की गीत-सृष्टि में यह तत्व सर्वत्र अनुस्यूत दिखाई देता है । आनन्द के जिस व्यापक तारल्य की अभिव्यक्ति की उसे स्पृहा थी, वह उसे "संगीत" शब्द में मिली ।"[१६] -

भारतीय- संगीत में गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों कलाओं का जिसमें समावेश होता है उसे संगीत कहते हैं अर्थात् संगीत के ये तीनों अंग माने गए हैं :-

"गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते"[१७]
गीतं, वाद्यं, नर्तनं च त्रयं संगीत मुच्यते"[१८]

संगीत सम्बन्धी शब्दावली का सामूहिक प्रयोग निराला की निम्नलिखित गीत में द्रष्टव्य है -

"इमन बजा,
स, रि, ग, म, प, ध, नि , स सजा सजा ।
एक पहर बीती रजनी,
मृदंग की धुन गिनी गनी,
सारंग आरोचित अवनी,
पग नूपुर गति गई लजा,
स्वर सुकण्ठ, अच्छवास मुखर,
मुक्त भास, विश्वास प्रखर,
मूर्च्छन उतरी, चढ़ी नितर
त्रिगुण रोह, अवरोह मजा ।"[१९]

यहाँ स, रि, ग, म, प, ध, नि, स, सात स्वर और स्वर सुकण्ठ गायन का, मृदंग वादन का और नूपुर नृत्य का प्रतीक है ।

प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर निराला जी में सांगीतिक अनुभूति हुई और वे गा उठे -

"कह, किस अलस मराल चाल पर
  गूंज उठे सारे संगीत,
पद पद के लघु ताल ताल पर
  गति स्वच्छन्द अजीत अभीत ।"[20]

^ ^ ^ ^

"यमुने तेरी इन लहरों में
  किन अधरों की आकुल तान
पथिक प्रिया सी जगा रही है
  उस अतीत के नीरव गान ।"[21] -

संगीत शब्द, अन्तर्मन की भावना, उमंग, उल्लास, व्यथा, करुणा, तड़पन इत्यादि को प्रकट करने के लिये उपयुक्त है । निराला जी की यह विशेषता है कि वे "संगीत" शब्द तक ही सीमित नहीं रहे अपितु उल्लास - विषादपूर्ण भावों को अभिव्यक्त करने के लिये सांगीतिक पारिभाषिक शब्दावली का उन्होंने प्रयोग किया । सांगीतिक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग प्राचीन कवियों की रचनाओं में भी मिलता है परन्तु निराला द्वारा इसका प्रयोग विस्तृत और सर्वाधिक श्रेष्ठ है । निराला जी ने अनेक कुशल गायकों एवं संगीतकारों का संगीत जी भर के सुना था । इसी कारण संगीत कला में वह इतने निपुण हो गए थे कि वे संगीत के मर्म को भली भांति पहचानते थे । उन्होंने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिये राग-रागिनियों का भी आश्रय लिया -

"गत रागों का सूना अन्तर
प्रतिपल तब भी मेरा मुखकर
भर देगा यौवन ।"[२२]

* * * *

"शृंगार रहा जो निराकार,
इस कविता में उच्छ्वसित-धार
गाया स्वर्गीय - प्रिया - संग
भरता प्राणों में राग-रंग,
रति रूप प्राप्त कर रहा वही
आकाश बदलकर बना मही ।"[२३]

"स्नेह की रागिनी बजी,
देह की सुर बहार पर,
वर विलासिनी सजी
प्रिय के अङ्ग हार पर ?"[२४]

निराला जी को संगीत का ज्ञान होने के कारण उन्होंने संगीत शब्द का प्रयोग सांगीतिक वातावरण की सृष्टि करने के लिये उचित सन्दर्भ में किया है ।

"पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अति सामान्य बात है, किन्तु जहाँ प्रतिपाद्य संगीत न होकर काव्य होर और इसमें अर्थ-गौरव का आधार सांगीतिक पारिभाषिक शब्दावली पर आश्रित हो, तब उसमें इन शब्दों का स्थान गौण होता है और इन शब्दों से ध्वनित होने वाले काव्यार्थ का स्थान प्रमुख होता है, फिर भी सांगीतिक वातावरण की सृष्टि हो जाती है। इस वातावरण का निर्माण कहीं

तो राग, ताल, नाद, स्वर, तान, सरगम, सप्तक, आरोह-अवरोह, स्वर, ग्राम, स्वर-लिपि, मूर्च्छना, गत, परदा, लय, मींड़ आदि शब्दों के प्रयोग से होता है और कहीं वंशी, वीणा, तन्त्री, वेणु, मृदंग, मुरली, प्रभृति, वाद्य यन्त्रों के नामोल्लेख से। इन शब्दों का प्रभाव या तीखापन इस बात पर अवलम्बित रहता है कि गीतकार की अपनी प्रत्यक्षानुभूति और भावानुभूति कितनी गहरी है और उसे उसने कितनी ईमानदारी से प्रकट किया है।"[२५]

तान :- राग़ों के स्वरूप को विस्तृत रूप में फैलाने को तान कहते हैं। "स्वरों को तानने अथवा फैलाने से ही "तान", शब्द की उत्पत्ति हुई है। रस की दृष्टि से "तान" भावावेश का ध्वनिपरक तरल रूप है। निराला जी ने संगीत के इस पारिभाषिक शब्द को उसके इसी वैलक्षण्य के साथ अपनी अभिव्यक्ति को रागसिक्त बनाने हेतु अपनाया।"[२६]

"अपने उस गीत पर
सुखद मनोहर उस तान की माया में
लहरों में हृदय की,
भूल सी मैं गई, संसृति के दुःख घात"।[२७]

* * * *

"मधुर मलय में यहीं,
गूँजी थी एक वह जो तान
लेती हिलोरें थी समुद्र की तरंग सी।"[२८]

* * * *

"जगत उर की गत अभिलाषा
शिथिल तन्त्री की सोई तान,
दूर विस्मृति की मृत भाषा
चिता की चिरता का आह्वान।"[२९]

उपर्युक्त उदाहरणों में " तान " शब्द " पूर्ण रूप से शास्त्रीय रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसमें तान का भाव, रस, आत्मा इत्यादि सभी कुछ विद्यमान है। शुद्ध सांगीतिक अर्थ में भी " तान " शब्द का प्रयोग निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -

" बज रही है सरस तान तरंगिनी,
बज रही वीणा तुम्हारी संगिनी,
अयि मधुर वादिनी, सदा तुम रागिनी -
अनुरागिनी। "[30]

स्वर :- संगीत का मुख्य पारिभाषिक शब्द स्वर है, जिसका प्रयोग निराला जी ने अपने काव्य में किया है। " स्वर उस ध्वनि का नाम है जो श्रुति के अनन्तर अवस्थित होता है, स्निग्ध तथा अनुरणनात्मक होता है और जो स्वतः ही निरपेक्ष रूप से श्रोताओं के चित्त का रंजन करता है। "[31]

" जग का एक देखा तार,
कण्ठ अगणित, देह सप्तक,
मधुर स्वर - झंकार। " [32]

* * * *

" प्रिय मौन एक संगीत भरा,
नव जीवन के स्वर पर उतरा। "[33]

* * *

एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिलाकर,
गाती हो ये कैसे गीत उदार। "[34]

* * *

"बाँधे थे तुमने जिस स्वर में तार
उतर गए उससे ये बारम्बार ।"[35]

भारतीय संगीत में पंचम स्वर का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । पंचम को आवाज को कोकिला की आवाज के समान माना जाता है क्योंकि कोकिला की ध्वनि मर्मस्पर्शी होती है इसलिये साहित्य में इसकी उपमा पंचम स्वर के रूप में की जाती है । कोकिला की कूक में एक हूक होती है जिसे सुनकर कवि का भावुक हृदय मचल उठता है । निराला जी ने कोकिल स्वर के सम्बन्ध में पंचम स्वर की चर्चा की है जैसे -

"मधुप निकर कलरव भर,
गीति - मुखर पिक - प्रिय - स्वर ।"[36]

"मधुप वृन्द बन्दी,
पिक - स्वर नभ सरसाया ।"[37]

"कोमल निषाद" कोमल, तरल और श्रृंगारिक भावनाओं को उद्रेक करता है । निराला जी स्वयं संगीतज्ञ थे इसलिए "कोमल निषाद" के प्रभाव से भली भांति परिचित थे एक स्थल पर उन्होंने कोमल निषाद को ठीक इसी भावना के साथ अभिव्यक्त भी किया है ।

"गए गाए जहाँ कितने राग,
देश के, विदेश के,
वहीं धाराएँ जहाँ कितनी किरणों को चूम
कोमल निषाद भर
उठे वे कितने स्वर
कितनी वे रातें,
स्नेह की बातें रखे निज हृदय में ।"[38]

सरगम :- संगीत-शास्त्र में " सरगम " का सबसे अधिक महत्व है। भारतीय शास्त्रीय - संगीत का आधार ही सरगम है। निराला जी ने " सरगम " शब्द के प्रयोग द्वारा सांगितिक प्रक्रियाओं की कल्पना के माध्यम से प्रकृति की क्रियाओं पर आरोपित करके नैसर्गिक संगीत की पद-पद पर कल्पना और पुष्टि की है। निराला जी के कई प्रगीतों में ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं।

"" जंगम को जड़, जड़ को जंगम
कर दे, भर दे सम और विषम,
उठते-गिरते स्वर के निरुपम
सरिगम तोड़े दुर्दम चहार। "" ३६

सप्तक :- सा, रे, ग, म, प, ध, नि - इन सात स्वरों के समुदाय को सप्तक कहते हैं। स्वरों के शुद्ध और विकृत भेद को सम्मिलित करके एक सप्तक में १२ स्वर बन जाते हैं। शुद्ध स्वर वह है जो अपने स्वाभाविक या मूलभूत स्थान पर स्थित है। विकृत - स्वर उसे कहते हैं जो अपने मूल स्थान से हट जाता है, चाहे वह नीचे की दिशा में हो या ऊपर की दिशा में। सा और प तो अचल स्वर हैं वह अपना मूल स्थान कभी नहीं छोड़ते हैं। शेष पांचों स्वर स्थान से हटते रहते हैं इसलिये उन्हें विकृत स्वर कहा जाता है। प्रत्येक राग के स्वरों का चयन सप्तक से ही होता है अत: सप्तक ही राग का आधार है।

"" कविवर निराला की सूक्ष्म कल्पना " सप्तक " को प्रकृति के संगीत में पहचान लेती है और वनस्थली में कूकते हुए नवीन किसलयों के सौन्दर्य को ही उनके हृदय से फूटने वाले " स्वर सप्तक " की उपमा, देकर प्रकृति में छा जाने वाले " वसन्त राग " को सुनने लगती है। उनकी दार्शनिक दृष्टि मानव देह रूपी सप्तक से उत्पन्न होने वाले भावों के मधुर संगीत को सुनती है और सूर्य की किरणों से झिलमिलाते हुए आकाश में स्थित

इन्द्र धनुष को " तार सप्तक " के रूप में देखने लगती है । ''[४०]

'' वर्ण रश्मियों से कितने ही,
छा जाते हैं मुख पर
जग के अन्तस्तल से उमड़
नयन पलकों पर छाए सुख पर
रंग अपार,
किरण तूलिकाओं से अंकित इन्द्र धनुष के
सप्तक तार । ''[४१]

* * *

'' दूत अलि, ऋतुपति के आये,
फूट हरित पत्रों के उर से
स्वर सप्तक छार । ''[४२]

<u>मूर्छना</u> :- यह शब्द संगीत-शास्त्र में पारिभाषिक माना जाता है । इस शब्द का प्रयोग भी निराला जी ने अपने काव्य में सफलतापूर्वक किया है । सात स्वरों के क्रम से आरोह-अवरोह को मूर्छना कहते हैं । यह शब्द निश्चय ही विलक्षण प्रयोग की क्षमता रखता है । निराला जी द्वारा मूर्छना शब्द का प्रयोग उनकी विलक्षण बुद्धि का प्रतीक है -

'' स्वर हिलोरें ले रहा आकाश में
कांपती है वायु स्वर उच्छ्वास में,
ताल मात्राएँ दिखाती भंग, नव गति, रंग भी,
मूर्छित हुए से मूर्छना करती उठाकर प्रेम छल
आनन्द पुलकित हों सकल, तव चूम कोमल -
चरण तल । ''[४३]

लय : काव्य तथा संगीत दोनों का ही आधार लय है । काव्य में कविता के छन्दों में जो प्रवाह होता है वह लय पर ही आधारित होता है । सांगीतिक दृष्टि से गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं की गति जो निरन्तर समान रूप से चलती है लय कहलाती है । किसी भी राग का विस्तार आलाप-तान, बोल तान, सरगम आदि लय के विभिन्न स्तरों पर ही आधारित होता है । निराला जी ने अपने गीतों में " लय " शब्द का प्रयोग किया है । लय से उनका तात्पर्य उस प्रवाह या उस आकर्षण से है जो स्वर एवं लय के सामंजस्य के कारण संगीत में नैसर्गिक रूप में ही व्याप्त रहता है । कवि की भावनाओं के प्रवाह में भी एक आकर्षण व गतिशीलता है और एक विशेष लय है -

"" रागिनी में मृत्यु द्रिम द्रिम,
तान में अवसान छाया
चरण की गति में विरत लय
सांस में अवकाश का दाय,
सुषमता में असम संचय,
वरण में निःशरण गाया । "[44]

ताल :- निराला जी को ताल सम्बन्धी गहन ज्ञान था । संगीत में " ताल " एक रूढ़ शब्द है जो लयबद्धता का द्योतक है । गीतिका की भूमिका में ही उन्होंने ताल एवं मात्रा सम्बन्धी अपने विचार दिये हैं ।

"" दो एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्दशास्त्र की अनुवर्तिता की है । भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिए हुए हैं । साथ-साथ उनके व्यक्तिकरण में एक एक कला है, जिसका परिचय, विज्ञजन अपने अन्वेषण से प्राप्त कर सकेंगे । यहाँ मैं उन पर विशेष रूप से न लिख सकूँगा । वे उस रूप में हिन्दी के न थे , इतना मैं लिखे देता हूँ । जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च, भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है

उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है। ताल प्राय: सभी प्रचलित हैं। प्राचीन ढंग रहने पर भी वे नवीन कण्ठ से नया रंग पैदा करेंगे।"[४५]

निराला जी ने अपने काव्य में कहीं कहीं "ताल" शब्द का प्रयोग किया है तथा विभिन्न तालों - धमार, रूपक, झपताल, चौताल, दादरा तथा तीन ताल आदि का उल्लेख किया है।

"और पेड़ों पा देते ताल,
    कर - तल - पल्लव - दल से निर्जन वन के
        सभी तमाल ?"[४६]

* * *

"नव गति नव लय, ताल छन्द नव,
    नवल कंठ, नव जलद मन्द्र रव
नव नभ के नव विहग वृन्द को
    नव पर नव स्वर दे।"[४७]

* * *

"नाचो हे, रुद्र - ताल,
    आँचो जग ऋजु अराल।
झरे जीव जीर्ण शीर्ण,
    उद्भाव हो नव प्रकीर्ण,
करने को पुन: तीर्ण,
    हों गहरे अन्तराल।"[४८]

<u>गत</u> : स्वरों की वह रचना जो ताल और - लय युक्त होकर "बंदिश" कहलाती है और किसी वाद्य यन्त्र पर बजाई जाती है उसे भारतीय-संगीत में "गत" कहते हैं और गत को ... बार बजाकर उसका अभ्यास करने को गत साधना कहा जाता है। विश्व की वीणा पर जो गत भावनाओं की बजती है उसके बारे में निराला जी कहते हैं :-

"नव किरणों के तारों से,
जग की यह वीणा बाँधी,
प्रिय, व्याकुल झंकारों से
साधो, अपनी गत साधो।"[49]

मींड़ :- जब एक स्वर दूसरे स्वर तक अखण्डित रूप से खींचा जाता है इस क्रिया को मींड़ कहते हैं। दो स्वरों को इस तरह से जोड़ा जाता है कि दोनों स्वर अलग होने पर दोनों की ध्वनियों में अलगाव नहीं रहता, इसलिये इस क्रिया को वाद्य यन्त्रों में जोड़ कहते हैं।

"मानव हृदय का आलोड़न करने वाली भावनाओं की तरंगों में विशिष्ट परिस्थितियों के कारण भावातिरेक की जो चमक कुछ क्षणों के लिये उद्भुत हो उठती है। उसी की मर्मस्पर्शिता को बोधगम्य बनाने हेतु छायावादी प्रगीतों में मींड़ का काम्य और वरेण्य प्रयोग हुआ है। निराला जी ने मींड़ शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त किया है।"[50]

"मींड़ मधुरतम विधुर दमन को,
गगन गीति की रति - गति रन की,
खुली रीति विपरीत सुमन की
रात - प्रात - किरणों के उत्पल।"[51]

"फिर संवार सितार लो,
बाँधकर फिर ठाट, अपने
अंक पर झंकार दो,
शब्द के "कलिदल" खुलें,
गति पवन भर काँप थर-थर
मींड़ भ्रमरावलि ढुलें,
गीत परिमल बहे निर्मल
फिर बहार बहार हो।"[52]

निराला का राग ज्ञान :- निराला जी एक सफल कवि होने के साथ साथ संगीतज्ञ भी थे इसलिये ही उन्हें रागों का सम्यक्

ज्ञान था। निराला जी ने अपनी अन्तर्मन की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिये चाहे वह उल्लास हो या अवसाद हो। उन्होंने संगीत में प्रविष्ट करके अपने भावों को अनेक राग-रागिनियों का नाम लेकर अभिव्यक्त किया।

निराला जी ने अपने काव्य में "राग-रागिनी" शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है निम्नलिखित उदाहरणों में "राग-रागिनी" शब्द का प्रयोग हमें देखने को मिलता है -

"नाचता पलकों पर आलोक,
किसी का, हर कर उर का शोक,
देखता मैं अशोक मन शोक,
उमड़ पड़ते हैं सौ - सौ राग"।[53]

* * *

"रचे गए गीत,
गए गाए जहाँ कितने राग।"[54]

"एक रागिनी रह जाती तो,
तेरे तट पर मौन उदास,
स्मृति सी भग्न भवन की, मन को,
दे जाती अति क्षीण प्रकाश।"[55]

* * *

निराला जी ने अपनी पौरुषता तथा ओजपूर्ण भावनाओं को व्यक्त करने के लिये मालकौंस राग बताया है -

"काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौंश नव वीणा पर।"[56]

* * *

" उठता मन्द्र,
मालकौंश हर,
नश्वरता को नव स्वरता कर दे
करता भास्वर ताल ताल पर । "[57]

निराला जी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये " भैरव " राग का भी प्रयोग किया है । प्राचीन मान्यताओं से पता चलता है कि भैरव का देवता " शिव " है जो संहार के लिये माने हुए देवता माने जाते हैं । प्रलय के अवसर पर शिव द्वारा किए ताण्डव नृत्य भी प्रसिद्ध हैं । निराला जी ने संहार, विनाश और भयंकरता के भावों को प्रदर्शित करते समय भैरव राग का उल्लेख किया है । निराला जी के " उद्बोधन " नामक गीत में इसका प्रयोग दिखाई देता है जैसे -

" बिखर भर जाने दे प्राचीन
बार बार उर की वीणा में कर निष्ठुर भंकार
उठा दूँ भैरव निर्जन राग,
बहा उसी स्वर में सदियों का दारुण , हाहाकार
संचरित कर नूतन अनुराग । "[58]

" राग-रागिनी " पद्धति के अनुसार " भैरवी " की गणना राग में न करके रागिनियों में की जाती है । आज के युग में " भैरवी " एक ठाट है और उसका प्रमुख, आश्रय राग " भैरवी " है । इस प्रकार से " भैरवी " अब रागिनी नहीं, राग है किन्तु फिर भी संगीत का वैज्ञानिक विवेचन करने वाले मनीषियों को भी इसके लालित्यपूर्ण नाद सौन्दर्य ने इसे रागिनी कहे जाने के प्रलोभन से अछूता नहीं छोड़ा । आचार्य भातखण्डे जैसे व्यक्ति भी इसे अपने दस " ठाटों " में से एक " ठाट " मानकर तथा राग नाम से इसका उल्लेख करके अपने लक्षण गीत में इसे " प्रथम प्रहर की रानी " कह ही गए हैं । "[59] निराला जी ने भैरवी राग का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है -

"भैरवी भरी तेरी झंझा,
    तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा,
लेगी खंग और तू खप्पर,
    उसमें रुधिर भरूँगा माँ
मैं अपनी अंजलि भर-भर
    उंगली के पोरों में दिन गिनाता ही जाऊं
                                    क्या माँ
एक बार बस और नाच तू श्यामा।"[60]

* * *

"सुप्त सुख की सेज पर सोती हुई,
हो रही है भैरवी तू नागिनी,
  या किसी व्याकुल विदेशी के लिए
बज रही है तू इमन की रागिनी।"[61]

प्रत्येक संगीतज्ञ का अपना प्रिय राग होता है। "निराला जी को भी व्यक्तिगत रूप से 'यमन' राग से अधिक अनुराग था। उन्होंने अपने भावाभिव्यक्ति के लिये यमन राग का प्रयोग किया। यमन राग का भावात्मक प्रभाव मादकता, तारल्य और विह्वलता को अभिव्यक्त करता है। विप्रलंभ-श्रृंगार की भावना भी इसमें बड़ी सूक्ष्मता से अभिव्यक्त होती है। निराला जी ने यमन राग के सारभूत प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए इस राग का सांदर्भिक प्रयोग किया।"[62]

"तुम्हारे कुंचित केशों में,
    अधीर विक्षुब्ध ताल पर
  एक इमन का-सा अति मुग्ध विराम।"[63]

* * *

" इमन बजा,

स, रि, ग, म, प, ध, नि , स,

सजा सजा । "[64]

इसी प्रकार " देस " राग के स्वरों में एक ऐसी मार्मिकता और एक ऐसी व्यथा है जो श्रोताओं के हृदय पर तुरन्त प्रभाव डालती है। इस राग की इस विशिष्टता के कारण निराला जी ने अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार की है -

" मर्मस्पर्शी देश राग के से प्रभाव,
क्या तुम बतलाते हो,
जब किसी पथिक को इधर कभी आते जाते
पाते हो । "[65]

श्रृंगार तथा शान्त रस की भावनाओं का प्रस्फुटन " आसावरी राग " द्वारा होता है। दोनों आपस में विरोधी दिखाई देते हैं और यह आश्चर्य की बात है कि शान्त हृदय में ही कभी श्रृंगारिक भावनाओं का उदय हो सकता है। कवि निराला ने " आसावरी " का ऐसा ही प्रयोग एक स्थल पर किया है जैसे -

" परिजात पुष्प के नीचे बैठे सुनोगे तुम,
कोमल कण्ठ कामिनी की सुधा भरी आसावरी । "[66]

निराला जी ने एक स्थान पर " गौरी राग " का भी उल्लेख किया है जैसे -

" बजती है गौरी
युवती के कर वीणा
पूरब को बहती है
नाव, एक मीना
देता है ताल,
तालियों की सरती । "[67]

निराला जी ने केवल रागों का परिचय होने से यहां गौरी का उल्लेख किया है वैसे इन पंक्तियों में इनका कोई विशेष महत्व नहीं है। ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते हैं जहाँ पर निराला जी ने केवल रागों का नामोल्लेख किया

है जैसे विहाग, बहार, सिन्धु राग आदि ।

"कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग ।"[६८]

* * *

"मीड़ भ्रमरावलि ढूलें,
गीत परिमल बहें निर्मल,
फिर बहार बहार हो ।"[६९]

* * *

"फागुन के छूले फाग
गायें जो सिन्धु राग,
दल के दल भरमायें,
पातों से जो न छायें ।"[७०]

* * *

"अट्टहास उल्लास नृत्य का होगा जब आनन्द,
विश्व की इस वीणा के टूटेंगे सब तार,
बन्द हो जाएँगे ये सारे कोमल छन्द
सिन्धु राग का होगा, तब आलाप ।"[७१]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निराला जी को रागों का गहन ज्ञान था । उन्होंने रागों के नामों का उल्लेख करके अपने काव्य में भावात्मक प्रभावों का स्मरण किया है ।

निराला काव्य में वाद्य यन्त्र :-

भारतीय संगीत में वाद्यों का अत्याधिक महत्व है यदि वाद्य न होते तो शायद शास्त्रीय संगीत की कोई परम्परा ही न होती । निराला जी भी

इस तथ्य को पूर्ण रूप से जानते थे इसलिये ही उन्होंने अपने काव्य में विभिन्न वाद्य यन्त्रों का उल्लेख किया है । आपने अपने काव्य में भारतीय वाद्यों के साथ साथ पाश्चात्य वाद्य यन्त्रों का भी उल्लेख किया है । इस प्रकार उन्होंने अपने काव्य में भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत का सामंजस्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । निम्नलिखित पंक्तियों में भारतीय एवं पाश्चात्य वाद्य यन्त्रों का एक साथ उल्लेख किया गया है ।

"मैं डबल जब बना डमरू
इक बाल तब बना वीणा
मन्द्र होकर कभी निकला
कभी बनकर ध्वनि दीणा,
मैं पुरुष और मैं ही अबला,
मैं मृदंग और मैं ही तबला,
चुन्ने खाँ के हाथ का मैं ही सितार
दिगम्बर का तानपुरा, हसीना का सुर बहार
मैं ही लायर, लीरिक मुझसे ही बने,
संस्कृत, फारसी, अरबी, ग्रीक, लैटिन के जने,
मंत्र, गजलें, गीत । मुझसे ही हुए शैदा
जीते हैं, फिर मरते हैं, फिर होते हैं पैदा,
वायलिन मुझसे बजा,
बेन्जो मुझसे बजा,
घन्टा, घण्टी, ढोल, डफ, घड़ियाल,
शंख, तुरही, मजीरे, करताल,
कारनेट, क्लेरिओनेट ड्रम, फ्लूट, गीटार,
बजाने वाले हसन खाँ, बुद्धू पीटर,
मानते हैं सब मुझे ये बायें से,
जानते हैं दायें से ।"[72]

वाद्यों की बनावट के आधार पर वाद्यों के चार प्रकार माने जाते हैं जो निम्नलिखित हैं - तत, वितत, घन तथा सुषिर। जो तन्त्रियों से युक्त होते हैं "तत-वाद्य" कहलाते हैं। इन्हें उंगली, कोण या गज द्वारा बजाया जाता है। सितार, वायलिन, वीणा, तम्बूरा इत्यादि वाद्य इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। जो वाद्य चमड़े के मढ़े हुए होते हैं और आघात किए जाने से बजते हैं "वितत-वाद्य" कहलाते हैं। यह आघात हाथ से, दण्ड से अथवा अन्य किसी भी माध्यम से किया जा सकता है। तबला, ढोलक, मृदंग, डमरू, डफ तथा दुंदुभी इत्यादि वाद्य इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं तथा जो वाद्य प्रायः धातु या काष्ठ से बनते हैं और इनमें ध्वनि आघातजन्य होती है वे घन-वाद्य कहलाते हैं। झाँझ , मंजीरा, करताल, घण्टा, जलतरंग आदि इसी श्रेणी के वाद्य हैं। सुषिर वाद्य वे हैं जिनमें छिद्रों में हवा फूंक कर स्वर निकाले जाते हैं। शहनाई, वंशी तथा वेणु आदि वाद्य इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

निराला जी के काव्य में हमें चारों तरह के वाद्यों का उल्लेख मिलता है जैसे -

<u>तत-वाद्य</u> :- यह वाद्य सबसे अधिक प्राचीन तथा महत्वपूर्ण वाद्य है। इन वाद्यों के तारों को नाखून, मिजराब अथवा घोड़े के बालों वाली कमान द्वारा झंकृत करके स्वर माधुर्य उत्पन्न किया जाता है। मध्यकाल तक सभी तन्तु-वाद्यों को "वीणा" कहा जाता था। पौराणिकता एवं धार्मिकता के कारण भारतीय वाद्य यन्त्रों में वीणा का अत्याधिक महत्व है। सरस्वती को तो वीणाधारिणी कहा गया है और निराला जी तो सरस्वती के आराधक थे इसलिये उनके काव्य में वीणा का उल्लेख सर्वाधिक मात्रा में मिलता है।

"वर दे वीणा वादिनी वर दे।

प्रिय स्वतन्त्र रव अमृत मन्त्र नव
भारत में भर दे ।"[७३]

अपने इस गीत द्वारा निराला जी ने हिन्दी साहित्य में सरस्वती को विशेष महत्व प्रदान किया है। इसी कारण अधिकतर साहित्य सम्मेलनों के प्रारम्भ में यह गीत गाया जाता है।

निराला जी ने वीणा को हृदय के प्रतीक रूप में कई स्थानों पर प्रस्तुत किया है -

"फिर अपनी कर की वीणा के उतरे ढीले तार,
कोमल कली अंगुलियों से कर सज्जित
प्रिये, बजायेंगी होंगी सुर ललनायें भी लज्जित ।"[७४]

"वह रूप जगा उर में,
बजी मधुर-वीणा किस सुर में ।"[७५]

सितार भी इसी वाद्य श्रेणी के अन्तर्गत आती है। जिसे "मिजराव" के सहयोग से ही बजाया जाता है। निराला जी ने मिजराव और सितार दोनों का उल्लेख एक साथ ही किया है।

"गाया जो राग, सब बहा,
केवल मिजराब ही रहा,
खिंचा हुआ हाथ शून्य
यह सितार तार ।"[७६]

तत-वाद्यों के अन्तर्गत आने वाले वाद्य जैसे तानपुरा, वायलिन, सुर बहार तथा बेन्जो का उल्लेख भी निराला जी ने अपने काव्य में किया है - "

"दिगम्बर का तानपुरा, हसीना का सुर बहार,

वायलिन मुझसे बजा
बेन्जो मुझसे बजा ।"[७७]

<u>वितत - वाद्य</u> :- जो वाद्य चमड़े से मढ़े हुए तथा अन्दर से पोले होते हैं और हाथ या अन्य किसी वस्तु के मारने से शब्द उत्पन्न करते हैं उन्हें वितत वाद्य कहते हैं। संगीत-ग्रन्थों में वितत वाद्यों का वर्णन अत्याधिक मिलता है। महर्षि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में वितत वाद्यों की संख्या एक सौ बतलाई है। निराला काव्य में भी इन वाद्यों का उल्लेख मिलता है।

निराला काव्य में मृदंग, ढोलक, डफ, तबला और डमरु आदि वितत वाद्य यंत्रों का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

"मैं डबल जब, बना डमरु

मैं मृदंग और मैं ही तबला

घण्टा, घण्टी, ढोल, डफ, घड़ियाल।"[७८]

<u>सुषिर - वाद्य</u> :- इन वाद्यों में वायु के दबाव को घटा बढ़ाकर स्वर ऊँचा नीचा किया जाता है और उनमें तीनों सप्तकों की रचना की जाती है।

सुषिर वाद्यों में छायावादी कवियों ने सबसे अधिक प्रयोग 'वंशी' का किया है। इसे ही मुरली, वेणु तथा बाँसुरी आदि कहा जाता है। निराला जी ने भी इसका उल्लेख अपने काव्य में हृदय की रागात्मक मनोवृत्तियों के लिये किया है। "छायावादी - कवियों के लिए जिस प्रकार 'वीणा' हृदय के उल्लास और विषाद की अभिव्यंजना के हेतु समर्थ प्रतीत हुई, उसी प्रकार 'वंशी' भी उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ एक बात और ध्यान रखना चाहिए और वह यह कि 'वंशी' सुषिर वाद्य या फूँक से बजने वाला बाजा है। एक दृष्टि से देखा जाए तो 'वीणा' में जितनी स्थूलता है, उतनी ही 'वंशी' में सूक्ष्मता है और भावनाओं के तारल्य की जो स्थूलता आँसू, कम्प

इत्यादि में परिलक्षित होती है। उसकी तुलना में ... श्वास, प्रश्वास में निर्गमन करने वाली भावनाओं की सूक्ष्मता निश्चय ही अपना विशिष्ट महत्व रखती है, इसीलिए छायावादी प्रगीतकार को जब भावनाओं के और भी गहरे तारल्य की अभिव्यंजना की आकांक्षा हुई, तब उसने श्वासों के संकेत में द्रवीभूत होने वाली "वंशी" को ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए सम्बल रूप में ग्रहण किया है।"[७६]

निराला जी ने वंशी को अपने काव्य में महत्व देते हुए इसका उल्लेख किया है जैसे -

""कैसी बजी बीन ?
सजी मैं दिन दीन
हृदय में कौन जो छेड़ता बांसुरी
हुई ज्योत्सनामयी अखिल मायापुरी
लीन स्वर सलील में, बन रही मीन।"[८०]

* * *

""तृप्ति वह तृष्णा की अविकृत,
स्वर्ग आशाओं को अभिराम
कान्ति की सरल मूर्ति निभृत
गरल को अमृत, अमृत को प्राण
रेणु वह किस दिगन्त में लीन
वेणु ध्वनि-सी न शरीराधीन।"[८१]

भारत का सबसे प्राचीन सुषिर वाद्य "शंख" है और प्राचीन काल से इसका उपयोग धार्मिक कार्यों तथा युद्ध में होता आया है। निराला जी ने इसका भी उल्लेख अपने काव्य में किया है -

""घण्टा, घण्टी, ढोल, डफ, घड़ियाल
शंख, तुरही, मंजीरे, करताल।"[८२]

घन वाद्य :- जो वाद्य ठोकर लगाकर बजाए जाते हैं, घन वाद्य कहलाते हैं। इस प्रकार के वाद्य प्रायः सभी ताल वाद्य ही हैं। ये वाद्य प्रायः काँसा, पीतल या लकड़ी के ही बने हुए होते हैं। काँसे के बने हुए वाद्यों से सर्वश्रेष्ठ ध्वनि निकलती है। निराला जी ने भी अपने काव्य में घण्टा, घण्टी, घड़ियाल, मंजीरा, करताल आदि घन वाद्यों का उल्लेख किया है -

"घण्टा, घण्टी, ढोल, डफ, घड़ियाल,
शंख, तुरही, मंजीरे, करताल।"[83]

निराला जी का नृत्य सम्बन्धी ज्ञान :

"निराला" जी एक सफल संगीतज्ञ थे। गीत, वाद्य तथा इन तीनों कलाओं का संगम ही संगीत कहलाता है। अतएव निराला जी को नृत्य का भी संपूर्ण ज्ञान था। उन्होंने अपने काव्य में नृत्य शब्द के प्रयोग के साथ साथ नृत्य के विभिन्न प्रकारों का भी उल्लेख किया है। नृत्य शब्द उन्होंने अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है -

"या कहीं सुन्दर प्रकृति वन - संवर कर
नृत्य करती नायिका तू चंचला,
या कहीं लज्जावती क्षिति के लिए
हो रही सरिता मनोहर मेखला।"[84]

* * *

"घन, मृदंग वादन विद्युत के करों निपुणतर,
नृत्य परी का जैसे अर्जुन के अजंन पर
जलतरंग, लग कुछ कलरव बोल के मधुर स्वर।"[85]

शास्त्रीय नृत्य के दो परम्परागत रूप हैं। ताण्डव और लास्य। ताण्डव में उग्र भावों की अभिव्यक्ति होती है। अपने विद्रोही और ओज भावों को प्रकट करने के लिये निराला जी ने ताण्डव नृत्य का सहारा लिया है।

"तुम रण - ताण्डव - उन्माद नृत्य,
मैं मुखर मधुर नूपुर ध्वनि
तुम नाद - वेद ओंकार सार
मैं कवि श्रृंगार शिरोमणि ।"[८६]

<u>ताण्डव नृत्य</u> :- शिव जी के ताण्डव नृत्य का सुन्दर रुप हमें निम्न पंक्तियों में मिलता है जैसे -

"डमड़ डम डमड़ डम डमरु निनाद है
ताण्डव नचे शिव, प्रवाद उन्माद है ।"[८७]

निराला जी विद्रोही और क्रांतिकारी कवि होने के कारण तथा इनमें ओज पूर्ण भाव अधिकांश मात्रा में होने के कारण अपनी भावनाओं की पूर्ति करने के लिये वे ताण्डव नृत्य के लिये आवाहन भी करते हैं जैसे -

"एक बार बस और नाच तू श्यामा,
सामान सभी तैयार
कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुझको हार ?
कर मेखला - मुंड - मालाओं से बन मन अभिरामा
एक बार बस और नाच तू श्यामा
भैरव भरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा
लेगी खंग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरुंगा माँ
मैं अपनी अंजलि भर भर ।"[८८]

<u>नृत्य-शैलियां</u> :- भारत की विभिन्न नृत्य शैलियां जैसे भरत नाट्यम्, कथकलि, मणिपुरी आदि हैं । निराला जी ने अपने काव्य में कत्थक, कथकलि तथा मणिपुरी नृत्यों का उल्लेख किया है इसके अतिरिक्त पाश्चात्य नृत्यों का भी प्रयोग किया है तथा कहीं कहीं लोक नृत्यों का भी प्रयोग किया है. [illegible] पंक्तियों में नृत्यों का वर्णन देखने को मिलता है

जैसे -

"" ताताधिन्ना चलती है जितनी तरह,
देख, सब में लगी है मेरी गिरह
नाच में यह मेरा ही जीवन खुला,
पैरों से मैं ही तुला,
कत्थक हो या कथकलि या बाल डांस
क्लियोपेट्रा, कमल भौंरा, कोई रोमान्स,
बहेलिया हो, मोर हो, मणिपुरी, गरबा,
पैर, माफा, हाथ, गर्दन, भौंहे - मटका
नाच अफ्रीकन हो या यूरोपियन
सब में मेरी ही गढ़न
किसी भी तरह का हाव भाव
मेरा ही रहता है, सब में ताव
मैंने बदले पैंतरे,
जहाँ भी शासक लड़े,
पर है प्रोलेटेरियन फगड़े जहाँ
मियाँ - बीबी के, क्या कहना है वहाँ,
नाचता है सूद खोर जहाँ, जहाँ कहीं ब्याज डूबता
नाच मेरा क्लाइमेक्स को पहुंचता। ""[८६]

नूपुर :- नूपुरों का नृत्य कला में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय नृत्य-कला का नूपुर अर्थात् घुंघरू एक विशिष्ट अंग है जिसे हम कदापि भिन्न भिन्न नहीं कर सकते। भारतीय नृत्य भावों के साथ साथ लय पर आधारित है। पदों की क्रिया द्वारा लय के प्रत्येक स्वरूप को दर्शाया जाता है और पैरों की ध्वनि को घुंघरू द्वारा बतलाया जाता है। हमें निराला जी के काव्य में नूपुरों की रण-रणन, स्पष्ट सुनाई देती है। कंगन की कण कण " किंकणी " की किण किण और पायल की छम छम निराला जी के

काव्य में संगीत के माधुर्य की और भी वृद्धि कर देती है -

"कण-कण कर कंकण प्रिय
किण किण रव किंकिणी
रणन - रणन नूपुर - उर लाज
लौट रंकिणी,
और मुखर पायल स्वर करें बार बार,
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृंगार ।"[६०]

अंग-संचालन :- निराला जी ने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर नृत्य संबंधी मुद्राओं का वर्णन किया है जिसके अन्तर्गत अंग-संचालन की क्रियायें आती हैं जैसे -

"झुक झुक, तन तन, फिर झूम झूम हंस हंस, झकोर,
चिर परिचित चितवन डाल, सहज मुखड़ा मरोर,
भर मुहुर्मुहुर, तन गन्ध विमल बोली बेला
मैं देती हूँ सर्वस्व, छुओ मत अवहेला
की अपनी स्थिति की जो तुमने, अपवित्र स्पर्श
हो गया तुम्हारा, रुको, दूर से करो दर्श ।"[६१]

निराला और लोक-संगीत :-

निराला जी जन-जीवन के अमर गायक हैं । निराला जी लोक जीवन में पलकर बड़े हुए इसलिये उनकी रुचि लोक गीतों के प्रति अधिक थी । "प्राय: संगीत के चारणों में वे लोक गीतों को सस्वर गाते हैं अत: यदि उनसे सम्बद्ध भाव उनके गीतों में उतर आवें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । फलत: अनेक गीतों में लोक-गीतों की धुनें मिलेंगी ।"[६२]

निराला जी के प्राणों का संगीत, लोक संगीत माना जाता है । लोक गीतों का स्वच्छन्द संगीत गीतिका, अर्चना, आराधना, गीतगुंज एवं बेला

में दिखाई देता है। "निराला के लोक गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे नितान्त प्रकृत, आडम्बर रहित निरलंकार एवं जन रुचि के निकट प्रतीत होते हैं।"[63]

निराला जी लोक गीतों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ गीतकार हैं। उन्होंने ग्रामीण लोक गीतों के अनुरूप भी अपने अनेक गीतों की रचना की है। कुछ गीतों में मार्मिकता के गुण अधिकांश मात्रा में दिखाई देते हैं जिनमें इनकी गणना निराला के सर्वश्रेष्ठ गीतों में की जा सकती है जैसे -

"बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु,
पूछेगा सारा गाँव, बन्धु।
यह घाट वही जिस पर हँसकर,
वह कभी नहाती थी धँसकर,
आँखें रह जाती थीं फँसकर,
कँपते थे दोनों पाँव, बन्धु।
वह हँसी बहुत कुछ कहती थी
फिर भी अपने में रहती थी
सबकी सुनती थी, सहती थी,
देती थी सबके दाँव, बन्धु।[64]

निराला जी ने जनहित के लिये ही गीत लिखे हैं ऐसा लगता है। उन्होंने पूर्वांचल की बोली में भी लोक गीतों की रचना की है जिसमें चित्तरंजन बहुत गहराई के साथ होता है ऐसे जनसंगीत का एक अति सुन्दर उदाहरण होता है। जो "अर्चना" के गीतों में सर्वाधिक मधुर है जैसे -

"गवना न करना,
खाली पैरों रस्ता न चला,
कुंकरीली राहें न कटेंगी,
बेपर की बातें न पटेंगी,
काली मेघनियाँ न फटेंगी,
ऐसे - ऐसे तू डग न भरा।"[65]

निराला जी को होली की धुन सर्वाधिक प्रिय थी इसलिये उन्होंने होली गीत कई लिखे हैं जिनमें लोक गीतों की लयात्मकता प्रवाहित होती जान पड़ती है। होली के सभी गीतों में सबसे श्रेष्ठ एवं मधुर गीत -

"फूटे हैं आमों में बौर,
 भौंर वन - वन टूटे हैं।
होली मची ठौर- ठौर,
 सभी बन्धन छूटे हैं,
फागुन के रंग राग,
 बाग - वन फाग मचा है,
भर गये मोती के फाग,
 जनों के मन लूटे हैं।
माथे अबीर से लाल
 गाल सेंदुर के देखे
आँखें हुई हैं गुलाल
गेरू के ढेले कूटे हैं।" [६१]

लोक गीतों में प्रेम की अभिव्यक्ति भी निराला जी ने पर्वों के द्वारा की है। नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली में इसी आधार पर प्रेमी, प्रेमिका का संयोग वर्णन होली के माध्यम से चित्रित हुआ है। यह निराला का प्रसिद्ध तथा सर्वश्रेष्ठ होली गीत माना जाता है -

"नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली।
 जागी रात सेज प्रिय पति संग, रति सनेह रंग घोली,
दीपित दीप - प्रकाश, कंज छवि, मंजु, मंजु हँस खोली,
 मली मुख चुम्बन रोली।
प्रिय - कर - कठिन - उरोज - परस,
 कस - कसक - मसक गई चोली,
एक - वसन रह गई मन्द हँस, अधर-दशन अनबोली,
 कली-सी काँटे की तोली

मधु - ऋतु - रात, मधुर अधरों की पी मधु, सुध - बुध खोली
खुले अलक मुँद गये पलक - दल, श्रम - सुख की हद होली,
    बनी रति की छवि भोली ।
बीती रात सुखद बातों में, प्रात पवन प्रिय डोली,
उठी सँभाल बाल, मुख, लट, पट, दीप बुझा हँस बोली,
    रही यह एक ठठोली ।"[97]

यह होली गीत निराला जी बड़ी मस्ती से गाया करते थे । "नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली" वह बड़ी मस्ती में गा रहे थे । मैं चुपचाप गाना सुनता रहा ।"[98] यह हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ होली गीत माना जाता है । "लय की मादकता, पदावली की कोमलता, श्रृंगार-भाव की मधुरता ने उसमें अनुपम सौन्दर्य पैदा किया है । कहीं गति भंग नहीं, अन्त्यानुप्रास सब दुरुस्त हैं । निराला लोक गीतों का अनुकरण नहीं करते, उनकी धुन, चित्रण का ढंग, शब्द-योजना, वातावरण अपनाते हुए उन्हें अपने साहित्य के कलात्मक स्तर तक उठा ले जाते हैं ।"[99]

दूसरा होली गीत "मार दी तुझे पिचकारी" में श्रृंगारिक भावों के माध्यम से ब्रम्हा की शक्ति व माया का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है । इस होली गीत में लोक-गीतों का प्राकृतिक श्रृंगारिक वर्णन भी मिलता है -

"मार दी तुझे पिचकारी,
    कौन री रँगी छवि वारी,
फूल सी देह - द्युति सारी
    हल्की तूल-सी सँवारी,
रेणुओं -मली सुकुमारी,
    कौन री, रँगी छवि वारी ?
मुस्का दी, आभा ला दी,
    उर उर में गूँज उठा दी,
फिर रही लाज कीमारी,
    कौन री, रँगी छवि वारी ।"[100]

जो गीत होली की धुन में लिखे गये हैं । उनमें अधिकांशत: सौन्दर्य तथा शृंगारिक चित्रण मिलते हैं - "कौन गुमान करो जिन्दगी का" इस गीत की शब्द योजना में वैराग्य है किन्तु यहाँ भी निराला जी ने होली की धुन का ही प्रयोग किया है ।

"कौन गुमान करो जिन्दगी का ?
जो कुछ है, कुल मान उन्हीं का,
बँधे हुए घर - बार तुम्हारे,
माथे है नील का टीका,
दाग - दाग कुल अंग स्याह हैं,
रंग रहा है फीका -
तुम्हारा कोई न जी का,
एक भरोसा, एक सहारा
बारा - न्यारा बन्दगी का
ज्ञान गढ़ा कब, मान हुआ कब
ध्यान गया जब पी का,
बना कब आन किसी का ।"[१०१]

कजली के माध्यम से भी निराला जी ने अपने लोक संगीत को दर्शाया है -

"यदि होली की धुन में वैराग्य का गीत गाया जा सकता है तो कजली की धुन में राजनीतिक कविता भी लिखी जा सकती है । भारतेन्दु के समय से राजनीतिक कविताएँ लिखने के लिये लोक गीतों का उपयोग होता रहा है ।"[१०२]

कजली नामक लोक - गीतों में करुण रस अधिकांश मात्रा में दिखाई देता है । निराला जी ने "बेला" नामक संग्रह में राजनीति प्रधान गीत के लिये कजली की धुन का प्रयोग किया है -

"काले - काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल
कैसे कैसे नाग मँडलाये, न आये, वीर जवाहरलाल
पुरवाई की हैं फुफकारें, छन-छन ये विष की बौछारें
हम हैं जैसे गुफा में समाये, न आये वीर जवाहरलाल
मँहगाई की बाढ़ आई, गाँठ की गाढ़ी कमाई
भूखे - नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल"[१०३]

निराला जी ने इसके अतिरिक्त एक और राजनीतिक कविता होली की धुन पर लिखी है। इसमें कहीं कहीं वसन्त ऋतु के वर्णन की झलक दिखाई देती है। युवकों का खून बह रहा है, कोयलों की लाली से कहीं उस खून का सम्बन्ध है यह सोचकर ही बहुत दुःख होता है। युवा - जन सभी बाधाओं को पार करके स्वाधीनता अवश्य प्राप्त करेंगे। कवि को यह पूर्ण विश्वास है।

"निकलें वृथा कोंपल लाल, फाग की आग लगी है
फागुन की टेढ़ी तान, खून की होली जो खेली।"[१०४]

निराला जी के गीतों में लोक संगीत की मिठास, मादकता तथा कोमल भावनाओं से ओतप्रोत सभी गुण विद्यमान हैं। इन गीतों में प्रयुक्त होने वाले प्रायः सभी शब्द स्पष्ट हैं जिससे लोक जीवन के लोक मंगल का सरल चित्र स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है जैसे -

"घन आये, घनश्याम न आये,
जब बरसे आँसू दृग छाये
पड़े हिंडोले धड़का आया,
बढ़ी पेंग, घबराई काया,
चले गले, गहराई छाया,
पायल बजे, होश मुरझाये
भूले छिन, मेरे न कटे दिन
खुले कमल, मैंने तोड़े तिन,

अमलिन मुख की सभी सुहागिन
मेरे सुख सीधे न समायें ।"[१०५]

निम्नलिखित पंक्तियों में भी यह भावना पाई जाती है ।

"खेलूँगी कभी न होली,
उससे जो नहीं हम जोली,
यह आँख कहीं कुछ बोली,
यह हुई श्याम की तोली,
ऐसी भी रही ठठोली
गाढ़े रेशम की चोली ।"[१०६]

ऐसा कहा जाता है कि जब निराला जी गाते नहीं थे, मन ही मन गुनगुनाते थे, दूसरों से अंग्रेजी में बातें करते थे, तब उनके मन में लोक धुनें गूंजती रहती थी जैसे -

"वरद हुई शारदा जी हमारी,
जिधर देखिए श्याम विराजे,
श्याम कुंज, वन, यमुना श्यामा ।"[१०७]

इन पंक्तियों में निराला जी की अन्तर्मन की भावनायें संगीत रूप में फैली हुई है । उनके लोक गीतों की विशेषता उनका नितान्त प्रकृत होना है । आधुनिक युग में लोक गीत शैली को सर्वाधिक प्रोत्साहित करने वाले कवि निराला ही हैं ।

"आडम्बरविहीन, निरलंकार, उनकी लोक रुचि और लोक रंगों की सहज संवेद्य विशेषताओं द्वारा काव्य की प्रकृत भूमि का यह श्रृंगार हिन्दी जन-गीतों की परम्परा का नया, आयाम है । 'बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु' 'गवना न करो' की व्यंजना प्रचलित लोक गीतों की है । लोक गीतों का विधान निराला के अतिरिक्त समकालीन कवियों में भी मिल सकता है, लेकिन

सहजता एवं सारल्य में, वे इनकी बराबरी नहीं कर सकते । छन्दों, लय और धुनें भी लोक गीतों की है । लोक गीतों की इसी प्रकृत भूमि पर स्वस्थ शृंगार के जो चित्र है, वे भी पूर्व परम्परा की सज्जा और अलंकरण से भिन्न है । "नैनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली" की सहज भावोच्छलता और सरल भोली व्यंजना, गीतिका परम्परा का विकास और नया मोड़ भी है । "खेलूंगी कभी न होली, उससे जो नहीं हम जोली", "दे न गए बचने की सांस", "केशर की कली की पिचकारी", "पात पात की गात संवारी", "प्रिय के हाथ लगाए जागी", "घन आए घनश्याम, न आए", "हरिण नयन हरि ने छीने हैं आदि का स्वस्थ शृंगार, कविता को जन-भावना के सन्निकट लाकर जनकाव्य की परम्परा का प्रारम्भ करती है और कोई आश्चर्य नहीं । यदि इनका अध्यात्मक परक अर्थ भी दिया जाये, लेकिन इनकी प्रकृत और लौकिक भावना ही इतनी परिष्कृत है कि किसी दूसरे आवरण की आवश्यकता नहीं । रीतिकाल के उद्दाम शृंगार आवेग की गोपियों की प्रेम-क्रीड़ा की ओर मुड़ जाता है वहाँ वैष्णव कवि- का सा रूप और रंग मिलता है तो केवल हिन्दी के आदि कवि विद्यापति से । निराला के इन गीतों को मैथिल-कोकिल का ही अभिनव विकास कहना चाहिए । स्वभावत: यहां निराला अभिनव विद्यापति हैं ।"[१०८]

"यद्यपि कवि के कतिपय गीतों की भाषा में दुरुहता पाई जाती है तथापि उनमें गेयता का गुण असंदिग्ध है । निराला ने खड़ी बोली संगीत को मधुर-मन्द स्वरों में सजाकर सँवारा है । यह सम्भव है कि ब्रज भाषा के पदों को गाने वाले उस्ताद अथवा प्राचीन उत्तरी संगीत स्कूल के कलावन्त उनके गीतों को गाने में असमर्थ रहे । निराला के गीतों को गाने का आनन्द वे ही ले सकते हैं, जिन्हें खड़ी बोली का पर्याप्त ज्ञान हो क्योंकि निराला बाजार के कभी न बन सकें ।"[१०९]

उनके लोक गीतों की भाषा भी सरल एवं सहज है, यदि उनका प्रचार किया जाये तो वह खूब प्रचलित होंगे ।

निराला की उर्दू-फारसी संगीत शैली (गजल) :

निराला जी ने हिन्दी काव्य संगीत को उर्दू-फारसी-बहरों की गजलों के माध्यम से मुखरित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है । "बेला" में निराला द्वारा रचित लगभग ३५ गजलें संगृहीत हैं । इनमें विशेषयह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं जिनमें फारसी के छन्द-शास्त्र का प्रयोग किया गया है । गजल में प्राय: सौन्दर्यात्मकता तथा भावनात्मकता की प्रधानता रहती है । सूफी कवियों ने तसव्वुफ और भक्ति भावना से ओतप्रोत अनेक गजलों की रचना की थी । छायावादी युग में सर्वाधिक गजलों का प्रयोग निराला जी ने ही किया है । "उर्दू संगीत का आधार लेकर निराला ने अनेक गीतों की सृष्टि की, जिनमें उर्दू शायरी जैसा दिलकश लहजा पाया जाता है । निराला के इन गीतों में लोक संगीत की सीधी सरल अभिव्यक्ति एवं सहज सम्प्रेषण-कला के दर्शन होते हैं ।"[१०९]

संगीत की मस्ती का एक उदाहरण जैसे -

"गिराया है जमीं होकर, छुटाया आसमां होकर
निकाला, दुश्मनें जाँ, और बुलाया मेहरबाँ होकर,
चमकती धूप जैसे हाथ वाला दबदबा आया,
जलाया गरमियाँ होकर, खिलाया गुलसितों होकर,
उजाड़ा है कसर होकर, बसाया है सर होकर
उखाड़ा है खाँ होकर, लगाया बागवाँ होकर ।"[११०]

इन पंक्तियों में उर्दू संगीत का लहजा देखने को मिलता है लय भी उसी प्रकार की है शब्द भी माधुर्य लिये हुए हैं ।

निराला काव्य में गजलों के दो प्रकार दिखाई देते हैं । पहले

प्रकार में उर्दू शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया है परन्तु ऐसे पदों की मात्रा बहुत कम है। अधिकांश पदों में उर्दू भाषा के छन्द तथा भाषा हिन्दी-संस्कृत की उपयोग की गई है जैसे -

उर्दू पदावली -

" बदली जो उनकी आँखे, इरादा बदल गया
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मचल गया। "[१११]

संस्कृत पदावली -

" स्नेह की रागिनी बजी
देह की सुर - बहार पर
वर विलासिनी सजी
प्रिय के अनुहार पर। "[११२]

इन उद्धरणों को देखने से पता चलता है कि निराला जी ने उर्दू प्रधान गजलों के द्वारा भाषा सम्बन्धी अपनी क्षमता को प्रकट किया है तथा दूसरी ओर संस्कृत पदावली, उर्दू पदों के साथ जुड़ी हुई है। दोनों ही प्रकारों पर कवि को समान रूप से सफलता प्राप्त हुई है।

गजलें कई प्रकार की होती हैं। कुछ कुछ गजलों के शेरों में पारस्परिक समान भाव होने से आपस में जुड़े हुए रहते हैं ऐसे शेरों को नज्म कहा जाता है। दूसरे प्रकार की गजल में स्फुट भावनाओं का प्रदर्शन रहता है इसमें शेर आपस में जुड़े नहीं रहते, बल्कि स्वतन्त्र रहते हैं। ऐसी गजलों में चमत्कार होता है। बाकी गजलों में भावनाओं की प्रधानता रहती है। निराला जी ने भी भावनाओं से ओतप्रोत ही गजलें लिखी हैं। स्फुट गजलों की संख्या कम है इसलिये निराला जी की इन गजलों में प्रगीत काव्य का सौन्दर्य पाया जाता है जैसे -

"हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन" ।[११३]

इस गज़ल के सभी शेर श्रृंगार रस से ओतप्रोत दिखाई देते हैं । निराला जी श्रृंगार-रस के कवि होने के कारण उन्होंने उर्दू गजलों की भांति (आशिक मिजाजी तथा शमा परवाना इत्यादि) नाजुक ख्यालों को स्थान नहीं दिया । उनकी गज़लों में गम्भीरता अधिक है । उन्होंने अपने काव्य संग्रह "बेला" में विशुद्ध उर्दू की कुछ गज़लें लिखी हैं । कुछ कविताओं में संस्कृत मिश्रित भाषा है तथा कुछ में संस्कृत - हिन्दी और उर्दू का मिश्रण मिलता है परन्तु जहाँ कहीं उन्होंने इन अतिवादों को छोड़कर सरल हिन्दी-उर्दू की कवितायें लिखीं । वहाँ वे स्वाभाविक सौन्दर्य से चमकने लगीं । निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जैसे -

"हँसी के झूले के झूले हैं वे बहार के दिन,
सलास वृन्तों के फूले हैं वे बहार के दिन,
जगे हैं सपनों में किरणों की आँखें मल-मलकर
मधुर हवाओं के भूले हैं वे बहार के दिन ।"[११४]

< < <

"बातें चलीं सारी रात तुम्हारी,
आँखें नहीं खुलीं प्रात तुम्हारी
पुरवाई के झोंके लगे हैं,
जादू के जीवन में आ जगे हैं,
पारस पाम की राग रँगे हैं
काँपी सुकोमल गात तुम्हारी ।"[११५]

इन गज़लों में निराला जी का कहीं-कहीं रहस्यवादी रूप भी दिखाई देता है । गज़लों के साथ साथ इनमें "कजली" भी प्रयुक्त है जिससे यह स्पष्ट होता

है कि वह एक सफल लोक गीतकार थे । बेला की निम्न गज़ल में यह तथ्य देखने को मिलते हैं जैसे -

"बीन की झंकार कैसी,
बस गई मन में हमारे
घुल गई आँखें जगत की
खुल गए रवि-चन्द्र-तारे ।
शरद के पंकज सरोवर के
हृदय के भाव जैसे,
खिल गए हैं पंक से उठकर
विमल विश्वास जैसे ।"[११६]

निराला जी की गज़लों में संवेदना कहीं दिखाई नहीं देती । "उनमें भी वे हास्य,व्यंग्य और जन सम्पर्कित अनुभवों को ही समाहित करने की चेष्टा करते हुए दिखाई देते हैं । उनकी कोई भी गज़ल संवेदना के लिहाज से पारम्परिक गज़ल नहीं है, बल्कि उसकी संवेदना काव्य-आभिजात्य से मुक्ति के प्रयत्न में लिखी गई कविताओं के अधिक निकट मालूम पड़ती है । यह एक प्रकार से गज़ल का फॉर्म अपनाते हुए भी उसमें एक प्रयोग है क्योंकि अधिकांश गज़लें गज़ल की विषयगत परिपाटी से अलग हैं । उनमें इश्क और विरह की चर्चा कहीं भी नहीं है । किसी विचारसूत्र को भी अत्यन्त गूढ़ ढंग से (गालिब और इकबाल की तरह) गूँथने का प्रयत्न वहाँ नहीं दिखाई देता । कहीं कहीं चुनौती में आकर जब भी निराला ने नाज़ुक-ख्याली दिखलाने की कोशिश की है, वे अधिकांशत: असफल ही रहे हैं, लेकिन जहाँ वे हास्य-व्यंग्य और उपेक्षित जन-साधारण की भावनाओं को अपनी गज़लों, में जगह देते हैं, वहाँ हमारा ध्यान उनकी ओर सहज ही आकर्षित हो जाता है, क्योंकि यहाँ संवेदना के स्तर पर उनकी रचनात्मक क्रियाशीलता, जो गज़लों से इतर ढंग की कविताओं में व्यक्त हुई है, एक हो जाती है ।"[११७]

उर्दू-भाषा में गज़ल का प्रयोग प्राय: प्रेम तथा इश्क के लिए ही किया जाता है। हास्य और व्यंग्य की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिये गज़लों का प्रयोग ठीक नहीं माना जाता है। गज़ल का यह स्वभाव निराला के प्रयोग में आड़े आता है। अपनी गज़लों की भाषा में निराला जी गज़ल के हर शेर को चमत्कृत नहीं कर पाये हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि निराला ने उर्दू शैली को अपनाकर गजल शैली को चमत्कृत करने का प्रयास किया है परन्तु संस्कृत-गर्भित पदावली में ढालने का प्रयत्न जो निराला जी ने किया, उससे गज़लों की सौन्दर्यात्मकता कम हो गई है क्योंकि उनका उर्दू भाषा पर विशेष अधिकार नहीं था। उर्दू कवियों की जो विशेषता है कि वे अपनी उर्दू भाषा में टकसालीपन लिए होते हैं वे गुण निराला जी में नहीं हैं। वैसे निराला जी को अपनी गज़ल रचनाओं की असफलता का अहसास है। उन्होंने अपनी गज़ल का स्वयं ही एक स्थान पर मजाक बनाया है जैसे –

"मैंने कला की पाटी ली है शेर के लिये, दुनियाँ के गोलन्दाजों को देखा, दहल गया।"[११८]

उपर्युक्त कथन से यह तात्पर्य नहीं है कि निराला जी की गज़लों का कोई विशेष महत्व नहीं है। एक ओर "निराला जी ने विषयगत परम्परा को तोड़कर गज़लों को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश की है वहीं उनके काव्य-प्रयत्न को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। इस तरह के प्रयोग बहुत ही काव्यात्मक और प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। कुछ भी हो, निराला जी का हिन्दी काव्य को उर्दू छन्द प्रयोग सम्बन्धी योगदान स्तुत्य है।"[११९]

निराला - काव्य में लय और ताल :-

संगीत में स्वर और लय का होना अत्यन्त आवश्यक है। कविता को संगीतमय बनाने के लिये जिस प्रकार भावानुसार कोमल स्वरों का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार काव्य को संगीत से ओतप्रोत करने के लिए लय का उपयोग किया जाता है।

लय शब्द की उत्पत्ति "ली" धातु से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है संयोग," एक रूपता मिलन। अर्थात् जब दो के बीच एकरूपता या साम्य इस प्रकार सम्पन्न हो जाये कि उसका अन्तराल न कम हो और न अधिक, तो उसे लय कहते हैं।

भारतीय संगीत विद्वानों ने स्वर के साथ ही संगीत की लय का महत्व स्वीकार किया है। गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों कलाओं की जो गति निरन्तर समान रूप से चलती है, लय कहलाती है। किसी भी राग का का विस्तार करते समय आलाप, तान, बोल तान, सरगम आदि सभी लय पर आश्रित होते हैं। यदि विस्तार में लय नहीं होगी तो वह कला अपूर्ण कहलायेगी तथा वह श्रोताओं को आनन्दविहीन कर देगी। राग में लय द्वारा ही वादी, संवादी तथा अनुवादी स्वरों की स्थापना होती है। गायन तथा वादन में लय के होने से एक प्रवाह आ जाता है जिससे ध्वनि का एक नियमित क्रम मन को एक विचित्र आनन्दानुभूत कर देता है जिससे संगीत में आत्मीयता उत्पन्न हो जाती है। निराला जी की भावनाओं के प्रवाह में भी एक लय तथा गतिशीलता है।

संगीत में "लय" तीन प्रकार की मानी जाती है - एक विलम्बित लय," दूसरी "मध्य लय" और तीसरी "द्रुत लय"। जब [illegible] धीमे धीमे गति से गाया, बजाया या नाचा जाता है तो इसे "विलम्बित लय" कहा

जाता है। इस लय से दुगनी लय को "मध्य लय" कहा जाता है जो बीच की गति है जो बहुत न तेज होती और न धीमी। इस मध्य लय से दुगनी तेज जो लय होती है "द्रुत लय" कहलाती है। इस बात को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि "द्रुत-लय" की आधी मध्य लय" होती है और "मध्य लय" की आधी विलम्बित लय होती है। भावों की जैसी गति होती है वैसी ही लय का वहाँ प्रयोग करना चाहिये।" निराला के गीतों में भावानुकूल लय मिलती है। प्रेम, माधुर्य और आल्हाद के प्रसंगों में अधिकतर मध्य लय का प्रयोग किया जा सकता है। गति और ओजपूर्ण स्थलों में द्रुत लय गीतों को प्रभावोत्पादक बनाती है। करुण तथा वेदनामय गीतों में विलम्बित लय का सृजन उपयोगी है।"[१२०]

निराला जी स्वयं क्रान्तिकारी तथा विद्रोही कवि होने के कारण द्रुत लय का काफी प्रयोग किया गया है। निम्नांकित पंक्तियों में द्रुत लय का भावानुकूल सुन्दर प्रयोग हुआ है जैसे -

"झूम झूम मृदु गरज - गरज घन घोर।
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर!
झर-झर-झर निर्झर - गिरि - सर में,
घर, मरु, तरु - मर्मर, सागर में
सरित - तड़ित - गति - चकित पवन में।"[१२१]

"तुम तुंग - हिमालय - श्रृंग,
　　और मैं चंचल - गति - सुर - सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
　　और मैं कान्त - कामिनी - कविता।"[१२२]

निराला जी के श्रृंगारिक गीतों में मुख्यत: मध्यलय का उपयोग किया गया है जैसे -

"मेरे प्राणों में आओ,
     शत शत, शिथिल भावनाओं के
उर के तार सजा जाओ।
     गाने दो प्रिय, मुझे भूल कर
अपनापन - अपार जग सुन्दर,
     खुली करुणा उर की सीपी पर
स्वाती - जल नित बरसाओ।"[123]

* * *

"जग का एक देखा तार।
     कण्ठ अगणित, देह सप्तक,
मधुर स्वर - झंकार।"[124]

निराला जी के काव्य में विलम्बित लय का प्रयोग बहुत कम मात्रा में दिखाई देता है फिर भी सन्ध्या सुन्दरी की निम्नलिखित पंक्तियों में विलम्बित लय का सुन्दर प्रयोग हुआ है जैसे -

"दिवसावसान का समय,
     मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या - सुन्दरी परी - सी
     धीरे - धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर
किन्तु गम्भीर नहीं है उसमें हास-विलास।"[125]

तुक :- "तुक का तात्पर्य है चरणान्त में वर्ण साम्य अलंकार अन्त्यानुप्रास की भी यही स्थिति है। अन्त्यानुप्रास का क्षेत्र विस्तृत है किन्तु तुक का क्षेत्र बहुत संकीर्ण है क्योंकि तुक चरणों के अन्तिम शब्दों में ही होती है। काव्य में लय और संगीत का जन्म भी तुक के कारण ही होता है।"[126] ऐसा

कहा जाता है कि तुक रागों का प्राण होता है। संगीत के लय पर अधिकार करने के लिये ही तुक का प्रयोग किया जाता है। हृदय की लयात्मकता से इसका अविच्छिन्न सम्बन्ध रहता है। इस सन्दर्भ में लक्ष्मी नारायण सुधांशु का मत है कि "हृदय की लयात्मक प्रवृत्ति से अन्त्यानुप्रास या तुकान्त का इतना सामंजस्य है कि पदोच्चारण के पहले ही विविदित की कल्पना से सम पर मस्तक झुक जाता है।"[127]

छायावादी कवियों में पन्त जी ने तुक के बारे में गम्भीरतापूर्वक लिखा है - "तुक राग का हृदय है, जहां उसके प्राणों का स्पन्दन विशेष रूप से सुनाई पड़ता है। राग की समस्त छोटी बड़ी नाड़ियाँ, मानो अन्त्यानुप्रास के नाड़ी चक्र में केन्द्रित रहती हैं। जहाँ से नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर वे छन्द के शरीर में स्फूर्ति - संचार करती रहती हैं। जो स्थान ताल में सम का है, वही स्थान छन्द में तुक का। वहाँ पर राग शब्दों की सरल-सरल, ऋजु-कुंचित "परतों" में घूम-फिरकर विराम ग्रहण करता, उसका शिर जैसे अपनी स्पष्टता में हिल उठता है। जिस प्रकार अपने आरोह-अवरोह में राग वादी स्वर पर बार बार ठहरकर अपना रूप- विशेष व्यक्त करता है, उसी प्रकार वाणी का राग भी तुक की पुनरावृत्ति से स्पष्ट तथा परिपुष्ट होकर लययुक्त हो जाता है।"[128]

निराला जी ने अपने काव्य में तुक का सर्वाधिक प्रयोग किया है जैसे -

"सिहर उठें पल्लव के दल, नव अंग,
बहे सुप्त परिमल की मृदुल तरंग।"[129]

* * *

"कहीं भी नहीं सत्य का रूप,
अखिल जग एक अन्ध - तम - कूप।"[130]

ताल :- संगीत के विभिन्न अंग ताल एवं लय इत्यादि हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मन को रंजित करना तथा वातावरण को आनन्दित करना होता है। लय स्वयं स्वरों को सुसज्जित करके अपने आप को एक मापक यन्त्र बना

लेती है जिसे हम ताल कहते हैं । लय से मात्रा और मात्रा से ताल बनते हैं । यह गत तबला, मृदंग आदि वाद्यों की सहायता से नापी जाती है । प्रत्येक ताल का स्वरूप भिन्न भिन्न होता है उनमें गति, मात्राओं तथा विभाजन में विभिन्नता होती है जिससे प्रत्येक ताल के लय में भी अन्तर रहता है । अत: किसी विशिष्ट पद की जो लय, गति या चाल होती है उसी से समानता रखने वाले ताल में यदि उस पद को निबद्ध किया जाये तो वह अधिक सुन्दर व प्रभावशाली लगेगा ।

निराला जी एक ही गीत को कई तालों में गा सकते थे जैसे उन्होंने कोई गीत कवित्त के लिये लिखा । वह गीत तीन - ताल, चार- ताल तथा झपताल में गाया जा सकता है । वैसे आपके गीत प्राय: सभी तालों में गाए जा सकते हैं स्वयं कवि ने गीतिका की भूमिका में लिखा है कि "ताल प्राय: सभी प्रचलित हैं । प्राचीन ढंग रहने पर भी वे नवीन कण्ठ से नया रंग पैदा करेंगे । कवि ने स्वयं कई उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जैसे -

धम्मार - "प्राण धन को स्मरण करते,
नयन झरते - नयन झरते ।"

धम्मार ताल में चौदह मात्राएँ होती हैं । इन दोनों पंक्तियों में धम्मार की चौदह पंक्तियाँ हैं इसके अन्तरे में विशेषता है -

"स्नेह ओतप्रोत,
सिन्धु दूर, शशि प्रभा दृग
अश्रु ज्योत्सना - स्रोत ।"

इन पंक्तियों में पहली और तीसरी पंक्ति में चौदह - चौदह मात्राएँ नहीं है दूसरी में है । पहली और तीसरी पंक्ति में मात्रा भरने वाले शब्द इसलिए कम हैं कि वहाँ स्वर का विस्तार अपेक्षित है और दोनों जगह बराबर पंक्तियां

रखी गई है यह मतलब गायक आसानी से समझ लेता है। यह उस तरह की घट-बढ़ नहीं जैसी पुराने उस्ताद गवैयों के गीतों में मिलती है। पहली पंक्ति की चौदह मात्रायें इस तरह पूरी होंगी -

२	१	२	२	२	२	२	१	
।	।	।	।	।	।	।	।	
स्ने +	ह +	ओ +	त +	प्रो +	ओ +	ओ +	त	= १४

गाने में हर मात्रा अलग उच्चारित होगी। इसी प्रकार तीसरी पंक्ति की मात्रायें बैठेंगी। यह संगीत - रचना की कला में गण्य है।

<u>रूपक</u> - यह सात मात्राओं की ताल है।

"जग का एक देखा तार
कण्ठ आणित देह सप्तक
मधुर स्वर - झंकार।

इसका एक विभाजन मैं कर रहा हूं परन्तु गायक अपनी सुविधानुसार कहीं भी सम्य रख सकता है। मैं केवल सात- सात मात्राओं का विभाजन कर रहा हूं-

"एक देखा तार। तार जग का,
कण्ठ आणित, देह सप्तक।
मधुर स्वर - झं , कार जग का

<u>झपताल</u> :- इस ताल में दस मात्रायें होती हैं इस प्रकार के गीत भी इसमें कई हैं :-

"अनगिनित आ गए शरण में जन - जननि,
सुरभि - सुमनावली खुली मधु ऋतु अवनि।"

"इसमें ह्रस्व - दीर्घ की घट - बढ़ करने से ताल का सत्य रूप स्पष्ट हो जायेगा। खड़ी बोली के आधुनिक कवियों ने इस छन्द की रचना नहीं की,

आर की है तो मैंने देखी नहीं । इसका मात्रा विभाजन -

" अनगिनित आ गए ।
शरण में जन-जननि ।
सुरभि सुमनावली,
खुली मधु ऋतु अवनि । "

जिस तरह गाने वाले धम्मार को रूपक और रूपक को धम्मार में गा सकते हैं, उसी तरह झपताल के गवैये इसे शूल में भी बांध सकते हैं । झपताल में आघात इस प्रकार आयेंगे -

" +		१		०		१ "	
अ	न	गि	नि	त	आ -	ग य	-

और शूल में इस प्रकार -

" +		०	१		१	० "	
अ	न	गि	नि	त	अ - ग	ये	- । "१३१

चौताल : इस ताल में बारह मात्राएँ होती हैं इसके भी गीत कई इसमें हैं -

" अमरण भर वरण - गान,
वन - वन, उपवन - उपवन,
जागी छवि, खुले प्राण

* * *

" वसन विमल, तनु - वल्कल,
पृथु उर सुर - पल्लव - दल,
उज्ज्वल दृग कलि कल - पल
निश्चल, कर रही ध्यान

प्रत्येक पंक्ति में बारह मात्रायें हैं कहीं भी कम ज्यादा नहीं है। गायक एकदम आसानी से ताल का विभाजन कर लेगा।

तीन-ताल :- इसमें सोलह मात्रायें होती हैं। वैसे सोलह मात्रा वाली चीजों का अधिक प्रचलन है इसलिये इस ताल के गीत इसमें अधिक हैं।

" आओ मधुर-सरण मानसि, मन
नूपुर चरण - रणत जीवन नित,
वंकिम चितवन चित - चारु मरण। "

या

" मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा ?
स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर, खिल न सकेगा।

इसमें सोलह मात्रायें होने के कारण गायक को ताल विभाजन करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी परन्तु जो पाठक ताल नहीं जानते हैं, वे "सम" ठीक जगह रखकर न गा सकेंगे।

दादरा :- इसमें छः मात्रायें होती हैं।

" सखि बसन्त आया।
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया

किसलय वसना, नव-वय लतिका
मिली मधुर प्रिय - उर तरु पतिका,
मधुप वृन्द बन्दी -
पिक स्वर नभ सरसाया। "

इसका छः मात्राओं में विभाजन -

"सखि वसन्त । आया - ।
मरा हर्ष । वन के मन ।
नवोत्कर्ष । छाया - ।

किसलय - वस । ना नव - वय । लतिका - ।
मिली मधुर । प्रिय - उर - तरु - । पतिका - ।
मधुप वृन्द । वन्दी, पिक ।
स्वर - नभ सर । साया - ।

छ: का विभाजन है । अन्त की चार मात्राओं को स्वर के बढ़ाने से छ: मात्रा काल मिलेगा ।

एक ओर -

"अपने सुख - स्वप्न मे खिली
वृन्त - कोकली ।
उसके मृदु उर से
प्रिय अपने मधुपुर से
प्रिय पड़े तारों के सुर - से,
विकच स्वप्न - नयनों से मिली फिर मिली
वह वृन्त की कली ।

विभाजन -

"अपने सुख । स्वप्न से खि । ली - ।
वृन्त की क । ली - ।
उसके मृदु । उर से प्रिय ।
अपने मधु । पुर के -
देख पड़े । तारों के सुर - से - ।
विकच स्वप्न । नयनों से । मिली फिर भि ।
ली - वह
वृन्त की क । ली - ।

"ली" के बाद बाकी मात्राएँ स्वरों के विस्तार में पूर्ण होती है। अन्त में एक "ली" के साथ "वह" आ गया है। वहाँ "ली" की दो मात्राएँ स्वर से और दो मात्राएँ लेती हैं। बाकी दो "वह" में आ जाती हैं यों "ली" - दो मात्राओं की होती हुए भी ऊपर छः मात्राएँ पूरी करती हैं। यानी चार मात्राएँ स्वर के विस्तार से आती हैं। बाकी छः का विभाजन पूरा है। स्वर घटता - बढ़ता नहीं है। जहाँ बीच में, घट बढ़ होना बुरा माना जाता है, वहाँ, बाद को कला।

कुछ ताल जैसे आड़ा चौताल आदि इसमें नहीं आ पाए हैं इनकी पूर्ति समय मिला तो मैं फिर करूँगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निराला जी को तालों का सम्पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने अपने काव्य में लय - तुक और ताल का बहुत ही सुन्दर सामंजस्य किया है।

<u>निष्कर्ष</u> :- निराला जी का संगीत-शास्त्र का अध्ययन गहन था। निराला जी को सुर एवं लय गहराई से आकर्षित करते रहे हैं। उनका संगीत उनके हृदय में बजता हुआ, बाहर आता हुआ मालूम पड़ता है। उनके गीतों को पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सुर से सजा हुआ है। निराला जी स्वयं संगीतज्ञ होने के कारण उन्होंने अपनी कविताओं को स्वर लिपि में निबद्ध कर स्वयं गाया है। गीतिका की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है -

"कभी कभी मुक्त कंठ होकर और कभी हारमोनियम लेकर इनमें से कुछ कुछ गीत मैंने गाकर सुनाये हैं।"[१३२] इसी से यह स्पष्ट होता है कि निराला जी संगीत मर्मज्ञ थे।

संगीत को काव्य के तथा काव्य को संगीत के निकट लाने का श्रेय निराला जी को प्राप्त है। उनका काव्य संगीतमय है तथा संगीत काव्यमय।

निराला जी के गीत करुण तथा शान्त रस से मिलकर श्रृंगार की ऐसी सृष्टि करते हैं कि इनकी तुलना में हिन्दी की कोई आधुनिक गीत सृष्टि नहीं ठहरती और इसे "निराला संगीत" के नाम से ही अभिहित करना सार्थक होगा ।

श्री जयशंकर प्रसाद निराला जी को कवि और संगीतज्ञ दोनों रूपों में श्रेष्ठ मानते हैं - "निराला जी हिन्दी कविता की नवीन धारा के कवि हैं और साथ ही भारती मन्दिर के गायक भी हैं । उनमें केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, कनेरी की सी एक मीठी तान नहीं, अपितु उनकी गीतिका में - सब स्वरों का समारोह है । उनकी स्वर साधना हृदय के ग्रामों को झंकृत कर सकती है कि नहीं, यह तो कवि के स्वरों के साथ तन्मय होने पर ही जाना जा सकता है ।"[१३३]

इस प्रकार निराला जी के काव्य का सांगीतिक दृष्टि से अवलोकन करने पर कहा जा सकता है कि निराला जी काव्य तथा भाव की दृष्टि से ही नहीं, संगीत की दृष्टि से भी सफल कवि हैं ।

--

सन्दर्भ ग्रन्थ

१ डेजी वालियर : निराला की संगीत साधना : पृ० ७३-७४

२ डा० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना पृ० २६२

३ प्रो० धनंजय वर्मा : निराला काव्य और व्यक्तित्व : पृ० ११७

४ निराला : गीतिका की भूमिका : पृ० ७

५ वही : पृ० १२

६ वही :

७ वही : पृ० ७

८ डेजी वालियर : निराला की संगीत साधना : पृ० ७६

९ निराला : रवीन्द्र कविता कानन : पृ० १४०

१० निराला : गीतिका की भूमिका : पृ० १०

११ निराला : ,, पृ० १२

१२ डेजी वालियर : निराला की संगीत साधना : पृ० ७७

१३ निराला : गीतिका : पृ० ३

१४ नन्द दुलारे बाजपेयी : महाकवि निराला : पृ० ४१

१५ डेजी वालियर : निराला की संगीत साधना : पृ० ७८

१६ डा० विमल गुप्ता : आधुनिक हिन्दी प्रगीत काव्य में संगीत तत्व पृ० २००

१७ शारंगदेव : संगीत रत्नाकर प्रथम भाग पृ० ६

१८ पं० दामोदर (अनुवादक विशम्भर नाथ भट्ट -संगीत दर्पण- पृ० ५

१९ निराला : सांध्य काकली : पृ० ६४

२० निराला : अपरा : पृ० ६७

२१ ,, ,, पृ० ९२

२२ ,, परिमल : पृ० ६२

२३ ,, गीतिका पृ०

२४ ,, बेला पृ० ३१

२५ डा० शकुन्तला शुक्ल : निराला की काव्य भाषा पृ० २४२

२६ डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ८१

२७ निराला : अनामिका : पृ० ७

२८ वही ,, पृ० ३७

२९ ,, परिमल पृ० १११

३० ,, अनामिका: पृ० २३

३१ डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ८२

३२ निराला : गीतिका : पृ० २४

३३ वही

३४ निराला : अपरा : पृ० ७२

३५ ,, अनामिका : पृ० ६६

३६ ,, गीतिका : पृ० ६

३७ वही ,, पृ० ५

३८ निराला : अनामिका : पृ० ६२

३९ ,, : आराधना : पृ० ६

४० डा० विमला गुप्ता : आधुनिक हिन्दी प्रगीत काव्य में संगीत तत्व पृ० २६०

४१ निराला : अपरा : पृ० ३९-४०

४२ ,, परिमल : पृ० ४०

४३ ,, अनामिका : पृ० ३३

४४ ,, अर्चना : पृ० ९९

४५ ,, गीतिका (भूमिका : पृ० १२-१३

४६ ,, परिमल : पृ० १५१

४७ ,, गीतिका : पृ० ३

४८ ,, आराधना : पृ० ५५

४९ ,, परिमल : पृ० ७७

५० डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ८६

५१ निराला : गीतगुंज : पृ० ६१

५२ ,, : अनामिका : पृ० ७८

५३ ,, : गीतिका : पृ० ८५

५४ ,, अनामिका : पृ० ६१-६२

५५ ,, परिमल : पृ० ६०

५६ ,, अनामिका : पृ० १२६

५७ निराला : अपरा : पृ०१७६-८०

५८ ,, अनामिका : पृ० ६७

५६ ,, कोमल सब सुर कर गुनि गावत, प्रथम प्रहर की रानी
ही भैरवी कही मन मानी -
हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका की
दूसरी पुस्तक : तृतीय संस्करण : पृ० ३८५-८६

६० निराला : अपरा : पृ० ११७

६१ ,, परिमल पृ० ६८

६२ डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ८६

६३ निराला : अपरा : पृ० ३६

६४ ,, सांध्य काकली : पृ० ६२

६५ ,, परिमल पृ०

६६ ,, परिमल पृ० २२६

६७ ,, आराधना पृ० ६६

६८ ,, अपरा : पृ० २३

६६ ,, अनामिका : पृ० ७८

७० ,, अर्चना पृ० ३०

७१ ,, परिमल : पृ० १३७

७२ ,, कुकुरमुत्ता : पृ० ४३-४४

७३ ,, गीतिका : पृ० ३

७४ वही

७५ निराला : परिमल : पृ० ७६

७६ निराला : गीतिका : पृ० २५

७७ ,, कुकुरमुत्ता पृ० ४४

७८ ,, कुकुरमुत्ता : पृ० ४३-४४

७९ डा० विमला गुप्ता : आधुनिक हिन्दी प्रगीत काव्य में संगीत तत्व : पृ० २८०-२८१

८० निराला : गीतिका : पृ० १०८

८१ निराला : परिमल : पृ० ११०

८२ निराला कुकुरमुत्ता पृ० ४४

८३ वही

८४ निराला : परिमल पृ० ९८

८५ निराला : अपरा : पृ० १६७

८६ ,, परिमल पृ० ८६

८७ निराला : सांध्य काकली : पृ० ६६

८८ ,, अपरा पृ० ११७

८९ ,, कुकुरमुत्ता पृ० ४४-४५

९० ,, गीतिका पृ० ८

९१ ,, अनामिका पृ०

९२ शिव गोपाल मिश्र : गीतगुंज : पृ० १८

९३ डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० १०४

९४ निराला : अर्चना : पृ० ५३

९५ ,, ,, पृ० १००

९६ ,, ,, पृ० ४९

९७ ,, ,,

९८ डा० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना : पृ० ४४०

९९ डा० परमानन्द श्रीवास्तव : निराला की कविताएं: मूल्यांकन और मूल्यांकन पृ० १७९

१०० निराला : गीतिका : पृ० ६०

१०१ ,, अर्चना : पृ० ८२

१०२ डा० परमानन्द श्रीवास्तव : निराला की कविताएं मूल्यांकन : पृ० १८१

१०३ निराला : बेला : पृ० ४६

१०४ ,, नये पत्ते : पृ० १०४

१०५ ,, अर्चना : पृ० १२१

१०६ ,, वही पृ० ५८

१०७ ,, गीतगुंज पृ० २३

१०८ धनंजय वर्मा : निराला काव्य का पुनर्मूल्यांकन पृ० १३९

१०९ डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ११०

११० निराला : बेला : पृ० ६२

१११ निराला : बेला : पृ० ८३

११२ ,, बेला : पृ० ३१

११३ ,, ,, पृ० २३

११४ ,, ,, पृ० २४

११५ ,, ,, पृ० १७

११६ ,, ,, पृ० १४

११७ दूधनाथ सिंह : निराला : आत्म हन्ता आस्था : पृ० ६४-६५

११८ निराला : बेला पृ० ८३

११९ डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ११४

१२० डैजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ११८

१२१ निराला : परिमल : पृ० १७५

१२२ वही ,, पृ० ८४

१२३ निराला : गीतिका : पृ० १३

१२४ ,, ,, पृ० २४

१२५ ,, परिमल पृ० १३५

१२६ डैजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ११६

१२७ डा० लक्ष्मी नारायण सुधांशु : जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त पृ० १३१

१२८ सुमित्रा नन्दन पन्त : पल्लव (भूमिका) पृ० ४०

१२९ निराला : गीतिका : पृ० २६

१३० ,, ,, पृ० २७

१३१ डैजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० १२२

१३२ निराला : गीतिका की भूमिका : पृ० १६

१३३ वही पृ० १